नैतिक - शिक्षा

मनसुखराम गुप्त

सूर्य-प्रकाशन, नई दिल्ली-६

प्रकाशक : सूर्य-प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-६

मुद्रक : अमर प्रिंटिंग प्रेस
८/२५ विजय नगर, दिल्ली-६

मूल्य : २.००

प्रथम संस्करण : २५ अगस्त १९६८

वि

कुछ पुस्तक के विषय में

भारतीय-परम्परा में नैतिक शिक्षा का उपदेश ऋषि-मुनि और धर्म प्रचारक दिया करते थे। जहाँ हमारी सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन हुआ, वहाँ इस अनधिकार चेष्टा को अपना कर्त्तव्य समझ कर पूर्ण करने का प्रयास किया है।

शिक्षा-निदेशालय, दिल्ली-प्रदेश ने नैतिक-शिक्षा का पाठ्य क्रम निर्धारित किया है। प्रस्तुत पुस्तक उक्त पाठ्य-क्रम के अनुसार माध्यमिक कक्षाओं (*middle classes*) के लिए लिखी है।

मनोवैज्ञानिक तत्वों का निबन्धात्मक रूप में स्पष्टीकरण करते हुए सरल, सुबोध एवं जीवन में प्रेरणाप्रद कथाओं, आदर्शों द्वारा उनकी पुष्टि की है।

विषय का स्पष्टीकरण करने का भरसक प्रयास रहा है। भाषा की सरलता का भी मैंने ध्यान रखा है।

शिक्षा-निदेशालय द्वारा प्रकाशित ४६ संदर्भ ग्रंथों (२० हिन्दी + २६ अंग्रेजी) का अध्ययन कोई करेगा इसमें संदेह है। फिर अध्ययन करने वाले छात्र-शिक्षक को बहुत-सा समय और धन खर्च करने के बाद इस समुद्र मंथन में मिलेगा क्या? पाठ्य-क्रम की दृष्टि से चुल्लू भर जल।

पुस्तक में प्रयुक्त लेख, कहानियाँ तथा एकांकी लेखकों का उनकी रचनाओं को अपनी आवश्यकतानुसार सम्पादित कर इस पुस्तक में संकलित करने के लिए हृदय से आभारी हूँ।

पुस्तक लिखने की प्रेरणा के लिए मित्रवर (प्रिंसिपल) लक्ष्मीचन्द जी (नयाबांस, दिल्ली) तथा सहयोग के लिए बन्धुवर भगवतीस्वरूप शास्त्री का धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

पुस्तक में संशोधन की दृष्टि से हर सुझाव का मैं स्वागत करूंगा।

२५ अगस्त १९६८ — तनसुखराम गुप्त

४०वाँ जन्म-दिवस

१६-सी, सी-सी. कॉलोनी
दिल्ली-७

नेतृत्व
साहस
देशभक्ति

नेतृत्व

नेता शब्द संस्कृत के 'नय्' धातु से बना है, जो 'ले जाने' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः नेता शब्द का अभिप्राय ले जाने वाला होगा। उसकी कृतित्व शक्ति को नेतृत्व कहेंगे। नेतृत्व करने की आवश्यकता मानव-जीवन की अनेक स्थितियों में रहती है। घर में माता-पिता घर का नेतृत्व करते हैं। स्कूल में प्रधानाध्यापक महोदय विद्यालय का नेतृत्व करते हैं। कक्षा में अध्यापक नेतृत्व करते हैं। खेल के मैदान मे कप्तान टीम का नेतृत्व करता है।

माता-पिता न हों या कहीं चले गए हों तो घर में बड़ा भाई या बहिन घर का नेतृत्व करते हैं। विद्यालय में प्रधानाध्यापक के अभाव में उप-प्रधानाध्यापक विद्यालय का नेतृत्व करता है। अध्यापक के अभाव में कक्षा का नेतृत्व कक्षा-प्रमुख (मॉनीटर) करता है।

इस भांति नेतृत्व की आवश्यकता प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक समय पर रहती है। नेतृत्व का अर्थ है—मार्गदर्शन अर्थात् रास्ता दिखाना। हर व्यक्ति में नेतृत्व करने का सामर्थ्य नहीं होता।

नेतृत्व की शिक्षा-प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वसुलभ स्थान कक्षा तथा खेल का मैदान है। कक्षा में प्रति सप्ताह नवीन कक्षा-प्रमुख चयन करने की प्रणाली से छात्रों में नेतृत्व करने की विधि ज्ञात होगी। कक्षा में अनुशासन रखने के लिए उसे ३०-४० छात्रों एवं

सहपाठियों की विभिन्न प्रकृति और प्रवृत्ति को समझने का अवसर मिलेगा। छात्रों की किस शरारत और उद्दंडता को किस भांति समाप्त करना चाहिए, उसका मस्तिष्क यह सोचने को विवश होगा।

इसी प्रकार खेल का मैदान नेतृत्व शक्ति की ज्ञान-प्राप्ति का सर्वसुलभ साधन है। महान् विजेता नेपोलियन को युद्ध में हराने वाले अंग्रेज सेनापति नेल्सन ने अपनी विजय का कारण इस प्रकार बताया था, 'वाटर लू के युद्ध में मैंने जो विजय पाई है, उसका प्रशिक्षण मैंने खेल के मैदान में लिया था।' अपने साथियों में से कौन फॉरवर्ड तथा हॉफबेक श्रेष्ठ खेल सकता है; कौन गोलची का कार्य श्रेष्ठतर रीति से निभा पाएगा, यह समझने की भावना नेतृत्व शक्ति प्रदान करती है। फिर, टीम की एकता बनी रहे, मन-मुटाव न हो, परस्पर वैमनस्य की भावना न आए, यह भी श्रेष्ठ नेतृत्व का लक्षण है। अतः साप्ताहिक मानीटर प्रणाली की भाँति साप्ताहिक कप्तान प्रणाली छात्र-छात्राओं में नेतृत्व भावना एवं शक्ति उत्पन्न करेगी।

नेतृत्व की शक्ति में मद स्वतः व्याप्त है। इस मद में यदि ईर्ष्या भी साथ आ गई, तो समझिए घी में अग्नि का काम हो गया। यदि यश और लोभ इसको स्पर्श कर गये, तो कोढ़ में खाज हो गई समझिए। कक्षा का मॉनीटर सहपाठी का नाम इसलिए बोर्ड पर लिखता है या बेंच पर खड़ा करता है कि वह अपनी जलन मिटा रहा है तो समझिए वह कक्षा के वातावरण को विषैला बना रहा है। खेल के मैदान में यदि कप्तान हाकी खेलने में सर्वथा अयोग्य छात्र को फॉरवर्ड खेलने के लिए इसलिए निमन्त्रण देता है कि वह उसका मित्र है तो उसे टीम की पराजय का आह्वान समझिए।

सफल नेतृत्व का विशिष्ट गुण है—नेता उत्पन्न करना। अर्थात् दूसरे व्यक्तियों में नेतृत्व शक्ति का विकास करना।

यदि नेतृत्व ही समूह में से सफल नेता नहीं बना सका, तो समूह अवनति की ओर अग्रसर होगा। शिवाजी और राणाप्रताप समस्त जीवन युद्ध में व्यस्त रहने के कारण अपने उत्तराधिकारी में नेतृत्व के गुण पैदा न कर सके। फलतः भारत में यवनों का शासन सुदृढ़ तथा क्रूर होता गया। पण्डित जवाहरलाल नेहरू १७ वर्ष तक देश का नेतृत्व करते रहे, किंतु अपने बाद देश के सफल नेतृत्व के लिए किसी को प्रशिक्षण नहीं दे पाए। परिणामतः देश का चहुँमुखी ह्रास हो रहा है।

आत्म-विश्वास, समभाव, निष्पक्ष-दृष्टि, सबको एक साथ ले चलने की अभिलाषा, मार्ग का यथार्थ ज्ञान सफल नेतृत्व की विशेषताएँ हैं।

साहस का साधारण अर्थ है हिम्मत। हिम्मत आती है निर्भयता से, निडरता से। जीवन और मरण के बीच का अन्तर मिटाना ही निडरता की कसौटी है।

'वीर भोग्या वसुन्धरा' कहकर वीरता की महत्ता निर्धारित की गई है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, 'दुर्बलता मृत्यु का लक्षण है। उससे दूर रहो। बल का वरण करो। पंचतंत्र ने कहा, 'कृशे कस्यास्ति सौहृदम्'—जो दुर्बल है, उससे कौन मैत्री करने आता है। वह पग-पग पर अपमानित होता है। जीवन नरक तुल्य हो जाता है।

भय और साहस परस्पर शत्रु प्रवृत्तियाँ हैं। एक म्यान में दो तलवारों की भांति ये दोनों प्रवृत्तियां मानव-हृदय में एक साथ नहीं रह सकतीं। भय मनुष्य को निश्चेष्ट बना देता है। छल-कपट सिखाता है; दुश्चिन्ताओं का पुतला बनाता है। स्वतन्त्र निश्चय की प्रवृत्ति को नष्ट कर देता है। भय मानसिक विकास का शत्रु है। ठीक भी है, जो लोग पाँव भीगने के भय से पानी से बचते हैं, समुद्र में डूबने का भय उन्हीं के लिए है। लहरों में तैरने का जिन्हें अभ्यास है, वे मोती लेकर बाहर आएँगे।

अर्नाल्ड बेनेट ने लिखा है, 'जो मनुष्य यह अनुभव करता है कि किसी महान निश्चय के समय वह साहस से काम नहीं ले सका, जीवन को चुनौती को स्वीकार नहीं कर सका, वह सुखी नहीं हो सकता।

जीवन उनका नहीं युधिष्ठिर ! जो उससे डरते हैं।
वह उनका जो चरण रोप निर्भय होकर लड़ते हैं॥

श्री विस्टन चर्चिल ने कहा है कि जीवन का सर्वश्रेष्ठ गुण साहस है, मानव के अन्य सभी गुण उसके साहसी होने से ही उत्पन्न होते हैं।

इसके विपरीत साहसी कर्मशील रहता है। उसमें स्वतन्त्र चिंतन और मनन की प्रवृत्ति निरंतर बनी रहती है। वह उन स्वप्नों में भी रस लेता है, जिनका कोई व्यावहारिक अर्थ नहीं है। मार्ग में आने वाली कठिनाइयों और विपत्तियों से घबराकर वह पाँव पीछे नहीं हटाता।

वह मृत्यु का एक बार वरण करता है। उसमें आत्म-विश्वास जाग्रत होता है। 'मैं शक्तिकेन्द्र हूँ, मेरी पराजय नहीं हो सकती' की दृढ़ भावना उदय होती है। न केवल वह सुखमय जीवन व्यतीत करता है, अपितु वह संसार में अद्भुत कार्य कर जाता है। भगवती सीता के अपहरण पर भगवान् राम ने निर्जन प्रदेश में सैन्य रहित होते हुए भी साहस के बल पर ही न केवल सीता प्राप्त की, अपितु अपहरण कर्त्ता बहुबलशाली एवं विद्वान् राक्षसराज रावण को भी मृत्युलोक में भेज दिया। साहस के बल पर ही भगवान् कृष्ण ने किशोरावस्था में आततायी राजा कंस को मृत्यु का वरण कराया। साहस के बल पर ही वीर शिवाजी मुगल सम्राट् औरंगजेब के कारागार से बच निकले। वीर सावरकर ने समुद्र में छलांग लगा दी। भगतसिंह ने असेम्बली में बम फेंका।

कहाँ तक गिनाई जाएं साहसी वीरों की गाथाएं। भारतीय इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ पर साहसी वीरों की गाथाएं अंकित हैं।

साहस उत्पन्न करने वाला सर्वश्रेष्ठ स्थल है—खेल का मैदान। सर्वश्रेष्ठ साधन है खेल। खेल में छात्र का भय दूर होता है। विजय प्राप्ति की अभिलाषा में खेल में उत्साह से भाग लेता है। उत्साह में साहस का प्रकटीकरण होता है। साहस उसको विजय प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है। इस प्रकार खेल के कुछ क्षण दैनन्दिन जीवन में साहस भरते हैं।

साहस का क्षेत्र घर से ही आरम्भ होता है। घर से स्कूल के लिए

देश-भक्ति

देश-भक्ति शब्द दो शब्दों से बना है—देश+भक्ति। इसका अर्थ है देश की सेवा। तन, मन और धन से देशहित कार्य करना देशभक्ति है।

हमारे पालन-पोषण में देश का प्रत्येक पदार्थ योग देता है। देश के अन्न और जल से हम बड़े होते हैं। देश की वायु और वातावरण हमें जीवनदान देते हैं। देश की सभ्यता और संस्कृति हमारे व्यक्तित्व का विकास करती हैं। इसलिए देश को स्वर्ग से भी बढ़कर माना गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने देश के गौरव से अभिमान-शून्य व्यक्ति को 'वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है' बताया है।

अंग्रेज कवि स्कॉट ने कहा है 'जिस व्यक्ति ने अपनी जननी-जन्मभूमि से प्रेम प्रदर्शित नहीं किया, वह चाहे जितना धनवान्, ज्ञानवान्, बुद्धिमान क्यों न हो, किन्तु वह अपनी जाति का आदर-भाजन, सम्मान-भाजन और प्रेम-भाजन नहीं होता। अपने जीवन काल में वह निजबंधुवर्ग के द्वारा अपमान की दृष्टि से देखा जाता है और मृत्यु के बाद उसकी उस लोक में निन्दा होती है और परलोक में भी उसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिलती।'

विदेशों में देशभक्ति के उत्कट उदाहरण मिलते हैं। प्रथम महायुद्ध में छोटे से जापान ने रूस जैसे विशाल देश को परास्त कर दिया था। गत वर्ष छोटे से इजराइल ने अरब राष्ट्रों को पराजित कर दिया। दो दशाब्दी पूर्व तक अंग्रेजी-साम्राज्य इतना अधिक विस्तृत था कि लोग कहते थे, 'उनके राज्य में सूर्य कभी नहीं डूबता।' यह सब इसलिए हुआ कि वहाँ का बच्चा-बच्चा मातृभूमि के लिए कट मरने को प्रस्तुत था।

हमारा देश १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्र हुआ। परतन्त्रता किसी को प्यारी नहीं। अतः १२०० वर्ष तक देश में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए प्रयास हुए। लाखों ने अपनी जान गँवाई; सहस्रों लोग

विदेशी शासकों द्वारा दी जाने वाली यातनाएं झेलते-झेलते शहीद हुए। लाखों घर बरबाद हुए। गाँव के गाँव तबाह हुए। लखपति से भिखारी बन गए, किन्तु देश-स्वातन्त्र्य के प्रयास जारी रहे।

दुर्भाग्य से अन्तिम दो सौ वर्ष की गुलामी ने हमें शरीर से ही नहीं, मन से भी परतन्त्र कर दिया। यही कारण है कि आज देश स्वतन्त्र हो जाने पर भी न हमें अपनी भाषा से प्यार है और न अपनी सभ्यता और संस्कृति से। मातृभूमि के मान बिन्दुओं के प्रति हमें श्रद्धा नहीं है। धर्म आज सुप्त है। जातिवाद, प्रान्तीयता, भाषा-विवाद आदि ने राष्ट्र की अखंडता नष्ट कर दी है।

देश-भक्ति देश पर न्याछावर होने की प्रेरणा देती है। पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण आसेतु हिमाचल हम एक राष्ट्र के निवासी हैं, यह भावना जाग्रत करती है, देश के पूज्य और तीर्थ स्थल हमारी मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं। देश की भाषा का प्रयोग हमारे राष्ट्र-प्रेम का परिचायक है।

देश-भक्ति ऊँचे स्वर से नारे लगाने मात्र में नहीं। उसके लिए कर्त्तव्य करना होगा। देश में फैली अराजकता, उच्छृंखलता को नष्ट करना होगा। रिश्वत, चोरबाजारी, भाई-भतीजावाद एवं दलवाद को तिलांजलि देनी होगी। जातीयता और धार्मिक अन्धविश्वास को समाप्त करना होगा। 'एक हृदय हो भारत जननी' की भावना देश वासियों में भरनी होगी।

आज भारत की सीमाओं पर शत्रु आक्रमण करने को तय्यार बैठा है। यदि हममें अटूट एवं अनन्य देश-प्रेम होगा, तो वह कभी माता की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकेगा।

वस्तुतः देशभक्ति वह अमृत है जिसे पीकर मानव अमर हो जाता है। इस क्षण भंगुर शरीर को मातृभूमि पर उत्सर्ग कर वह अमरत्व को प्राप्त करता है और सदा के लिए अमिट निशानी छोड़ जाता है—शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मिटने वालों का, यही बाकी निशां होगा॥

साहसपूर्ण कथाएँ

मरने की बाजी

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

एक गिरोह चूड़ावत सरदारों का, एक शक्तावत सरदारों का, क्षत्रिय, पर बहस यह कि सेना के हरावल-अग्रगामी दलों में का अधिकार किसे मिले ? महाराज ने निर्णय दिया—किले में घुस बैठा है, द्वार बन्द हैं, जो किले में पहले पहुँचे, वही हरावल बनने का अधिकारी। अब दोनों बढ़े उस किले की तरफ। कहीं से मारकर चूड़ावत सरदार किले के द्वार पर आ पहुँचा और वान से कहा—"हूलो, "हूलो हाथी कि द्वार टूट गिरे।"

हाथीवान ने रानों से हाथी की गर्दन थपथपाई, पैरों के अंगूठों से कानों को बिलबिलियाँ गुदगुदाई और हाथों से सिर को थपेला दे एक लम्बा हुंकार दिया। हाथी झपटा, पर किवाड़ों को टकराते रुक गया।

चाँदावत सरदार भी आ पहुँचा था, पल भर की देर भी असह्य थी। हाथी पर बैठा चूण्डावत सरदार चिल्लाया—"क्या बात है ?" हाथीवान ने कहा—"ठाकुर, किवाड़ों पर पैनी कीलें लगी हैं। इसी से हाथी रुक गया है।" सरदार हाथी की पीठ से कूदकर नीचे आ गया और उन पैनी कीलों से कमर लगाकर खड़ा हो गया—"लो, अब तो कीलें नहीं हैं, हूलो पूरे दम से हाथी।" हाथीवान हिचकिचाया, तो सरदार चिल्लाया—"नमकहरामी मत करो, हूलो हाथी।" हाथी का भारी मस्तक सरदार की छाती पर पड़ा और छाती कीलों से छलनी हो गई, पर किवाड़ चरमरा कर टूट गिरे।

चाँदावत सरदार ने यह देखा। बात बिगड़ गई थी। उसने झट तलवार से अपना सिर काट अपने हाथों से उसे किले में फेंक दिया—"किवाड़ कोई तोड़े, भीतर तो पहले हम ही पहुँचे।" यह क्या है। यह है आन के लिये बलिदान, शान के लिये कुर्बानी। इस वृत्ति का अर्थ है मृत्यु के प्रति अभय; जीवन के प्रति निर्लिप्तता।

'करू आगे बढ़कर मृत्यु का वरण।' राणा प्रताप इसी वृत्ति के प्रतीक हैं। समझौते की विजय नहीं, अनझुके ललाट की पराजय पसन्द। राणा जानते थे कि दिल्ली के तूफान पर फतह पाना असम्भव है, पर वे मानते थे कि उस तूफान से टकराते हुए मिट जाना तो सम्भव है। अरे, हम आदमी की तरह आजादी से जी नहीं सकते तो आदमीकी तरह आजादी से मर तो सकते हैं।

शव की वापसी

आनन्दप्रकाश जैन

एक गाँव से गाड़ी में भूसा-चरी भरकर एक किसान और उसका पुत्र दिल्ली पहुँच गए। दिल्ली के भीतर जब भूसा-चरी बेचने के बहाने घुसे, तो दिन था। एक पेड़ के नीचे गाड़ी खोलकर दोनों बैठ गए। दोनों ने अपने-सिरों पर मुसलमानी मुडासे बाँध लिए थे। शरीर का धर्म बदलते क्या देर लगती ? हाँ, मन का धर्म अवश्य बदलकर भी नहीं बदलता।

बूढ़ा दिन में ही जाकर उस स्थान को देख आया, जहाँ राहचलतों की थोड़ी-सी भीड़ के बीच में, शाही सिपाहियों के पहरे में वह बल्ली खड़ी थी, जिस पर गुरुजी का सिर और धड़ टंगा था। उसके लौटने पर बाप-बेटे में सलाह होने लगी।

"तेगबहादुर जी का शरीर सड़ गया है बेटा, पर मुख पर अभी तेज है। सिपाहियों ने घेरा बाँध रखा है। मुँह पर कपड़ा लगाए डटे खड़े हैं। गुरुजी का शरीर वहां से कैसे निकाले ?"

किसान का बेटा सोलह सत्रह वर्ष का रहा होगा, पर समझ वही थी। बोला—"रात होने दो.................उनके शरीर को बल्ली से उतारने का काम मेरा रहा। नट की तरह ऊपर चढ़ना तो कोई मुझ से सीखे।"

बूढ़े ने और ही आशंका प्रकट की—"अगर शरीर ऊपर से उतार भी लिया, तो उसे लेकर उन्हें नगर से बाहर निकलते-निकलते ही सुबह हो जाएगी। तब तक तो पहरेदारों को पता लगे बिना रहेगा ही नहीं। फिर यही क्या जरूरी है कि रात होने पर सिपाही लोग सो जाएँ, अगर सो भी जायँ, तो क्या कोई जाग नहीं सकता ?"

इसी उधेड़बुन में रात हो गई। गुरुजी की दी हुई कृपाण को चूमकर

दोनों वीर उधर चले, जहाँ उनका काल उन्हें बुला रहा था। आधी रात का घड़ियाल बजने पर वे अपने छिपने के स्थान से उस बल्ली के निकट आए। मगर यह देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि सोता या जागता वहाँ एक भी सैनिक नहीं था। गुरु जी के शव से जो दुर्गन्ध आ रही थी वह सहन नहीं हो पा रही थी। शायद इसी कारण सिपाही लोग रात में शरीर छोड़कर कहीं दूर चले गए थे और सो गए थे।

जो भी हो, उन किसान बाप-बेटों के मन में तो भक्ति की सुगन्ध थी। पलक मारते ही किसान-पुत्र बल्ली पर चढ़ गया और रस्सी खोल डाली। नीचे से किसान ने शव को सम्भाल लिया। उसे चादर में लपेटकर वे अंधेरे में ले आए। हाँफते हुए किसान ने बेटे से कहा—"अब जल्दी कर। यह गुरुजी की कृपाण ले और मेरा सिर धड़ से अलग कर दे।"

"क्यों ?" आश्चर्य से किसान-पुत्र बोला।

"अरे पागल, थोड़ी ही देर में बल्ली के पहरेदार उसकी खबर लेने आएंगे। उन्हें अगर पता लग गया कि बल्ली सूनी है, तो पलभर में सारे शहर में सिपाही दौड़ जाएंगे। तब तक तो हम बाहर निकल ही नहीं पाएंगे। हम भी मारे जाएंगे और काम भी पूरा नहीं होगा। तू मेरा सिर काटकर सिर और धड़ दोनों बल्ली पर उसी तरह टांग देना, जिस तरह गुरुजी का शरीर टंगा था। बस, जब तक ये लो[illegible] यह चाल समझेंगे, तब तक तो अमृतसर का रास्ता काफी पार [illegible] ...।"

बेटे ने बाप के हाथ से कृपाण ले तो ली, पर वह रो पड़ा [illegible] के पैरों पर गिरता हुआ बोला—"यह मुझसे नहीं होगा, बाप[illegible]"

"होगा बेटा, अवश्य होगा," बूढ़े ने कहा, "याद नहीं, [illegible] जी ने क्या कहा था ? जिन्दगी बुलबुला है। जल्दी [illegible] तो सब सत्यानाश हो जाएगा।"

जब कोई असम्भव कार्य करना होता है, तो मनुष्य का मन बहाना ढूंढता है। लड़के ने कहा—"किस प्रकार मैं आपका शरीर लेकर बल्ली पर चढ़ूंगा......? बांधना तो दूर रहा।"

किसान ने एक पल सोचा। फिर वह बोला—"बेटा, यह मुश्किल भी आसान होगी। मैं पहले बल्ली पर चढ़ जाता हूं। तू मेरा सिर और धड़ बांध देना। फिर काट लेना......"

लड़का सुनकर फिर रो पड़ा। पर किसान ने देर नहीं की। उसने जल्दी-जल्दी गुरु तेगबहादुर के मृतक शरीर से खून-सने कपड़े उतारकर पहने, उन्हें अपने कपड़े पहनाए और बल्ली की ओर दौड़ा। पीछे-पीछे बेटा भागा। किसान बल्ली पर चढ़ गया। जाने किस प्रकार की फुरती उसके बदन में अचानक प्रवेश कर गई थी। लड़के ने बाप का शरीर बल्ली के साथ बांधा, फिर उसने धीमे से कहा—"बापू, विदा!"

"वाह गुरुजी की फतेह!" किसान के मुंह से निकला, "कृपाण चला, बेटा।"

किसान के बेटे ने कांपते हुए हाथ को स्थिर किया। फिर एक ही झटके में उसने पिता का सिर काट लिया।

थोड़ी देर तक किसान का सिर और धड़ फड़कता रहा। लड़का फटी आंखों से देखता, थर-थर कांपता हुआ बल्ली से चिपटा रहा। फिर उसने पिता का सिर खोलकर बल्ली के ऊपर लटकाया। मालूम होता था कि वह किसी नशे में यह सब काम कर रहा था।

नीचे उतरकर लड़के ने अन्तिम बार पिता के लटकते हुए शव को देखा। फिर गुरुजी का शरीर कंधे पर डालकर वह उस पेड़ की ओर भाग चला, जहां गाड़ी खड़ी थी।

सुबह को एक भूसे की गाड़ी दिल्ली का फाटक पार करके बाहर निकल रही थी। उसे एक किसान का बेटा हांक रहा था। उस किसान का और उसके बेटे का नाम आज इतिहास में नहीं मिलता।

दोनों ओर उधर चले, जहाँ उनका भाग्य उन्हें बुला रहा था। आधी रात का घड़ियाल बजने पर वे अपने छिपने के स्थान से उस बल्ली के निकट आए। मगर यह देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि सोता या जागता वहाँ एक भी सैनिक नहीं था। गुरु जी के शव से जो दुर्गन्ध आ रही थी वह सहन नहीं हो पा रही थी। शायद इसी कारण सिपाही लोग शव में शरीर छोड़कर कहीं दूर चले गए थे और सो गए थे।

जो भी हो, उन किसान बाप-बेटों के मन में तो भक्ति की सुगन्ध थी। पलक मारते ही किसान-पुत्र बल्ली पर चढ़ गया और रस्सी खोल डाली। नीचे से किसान ने शव को सम्भाल लिया। उसे चादर में लपेटकर वे अंधेरे में ले आए। हाँफते हुए किसान ने बेटे से कहा—"अब जल्दी कर। यह गुरुजी की कृपाण ले और मेरा सिर धड़ से अलग कर दे।"

"क्यों ?" आश्चर्य से किसान-पुत्र बोला।

"अरे पागल, थोड़ी ही देर में बल्ली के पहरेदार उसकी खबर लेने आएँगे। उन्हें अगर पता लग गया कि बल्ली सूनी है, तो पलभर में सारे शहर में सिपाही दौड़ जाएँगे। तब तक तो हम बाहर निकल ही नहीं पाएँगे। हम भी मारे जाएँगे और काम भी पूरा नहीं होगा। तू मेरा सिर काटकर सिर और धड़ दोनों बल्ली पर उसी तरह टाँग देना, जिस तरह गुरुजी का शरीर टंगा था। बस, जब तक ये लोग यह चाल समझेंगे, तब तक तो अमृतसर का रास्ता काफी पार हो जाएगा।"

बेटे ने बाप के हाथ से कृपाण ले तो ली, पर वह रो पड़ा और बाप के पैरों पर गिरता हुआ बोला—"यह मुझसे नहीं होगा, बापू।"

"होगा बेटा, अवश्य होगा," बूढ़े ने कहा, "याद नहीं, गुरु तेगबहादुरसिंह जी ने क्या कहा था ? जिन्दगी बुलबुला है। जल्दी कर,

जब कोई असम्भव कार्य करना होता है, तो मनुष्य का मन बहाना ढूँढता है। लड़के ने कहा—"किस प्रकार मैं आपका शरीर लेकर बल्ली पर चढ़ूँगा......? बांधना तो दूर रहा।"

किसान ने एक पल सोचा। फिर वह बोला—"बेटा, यह मुश्किल भी आसान होगी। मैं पहले बल्ली पर चढ़ जाता हूँ। तू मेरा सिर और धड़ बाँध देना। फिर काट लेना........"

लड़का सुनकर फिर रो पड़ा। पर किसान ने देर नहीं की। उसने जल्दी-जल्दी गुरु तेगबहादुर के मृतक शरीर से खून-सने कपड़े उतारकर पहने, उन्हें अपने कपड़े पहनाए और बल्ली की ओर दौड़ा। पीछे-पीछे बेटा भागा। किसान बल्ली पर चढ़ गया। जाने किस प्रकार की फुरती उसके बदन में अचानक प्रवेश कर गई थी। लड़के ने बाप का शरीर बल्ली के साथ बांधा, फिर उसने धीमे से कहा—"बापू, विदा!"

"वाह गुरुजी की फतेह!" किसान के मुँह से निकला, "कृपाण चला, बेटा।"

किसान के बेटे ने काँपते हुए हाथ को स्थिर किया। फिर एक ही झटके में उसने पिता का सिर काट लिया।

थोड़ी देर तक किसान का सिर और धड़ फड़कता रहा। लड़का फटी आँखों से देखता, थर-थर काँपता हुआ बल्ली से चिपटा रहा। फिर उसने पिता का सिर खोलकर बल्ली के ऊपर लटकाया। मालूम होता था कि वह किसी नशे में यह सब काम कर रहा था।

नीचे उतरकर लड़के ने अन्तिम बार पिता के लटकते हुए धड़ को देखा। फिर गुरुजी का शरीर कंधे पर डालकर वह उस पेड़ की ओर भाग चला, जहाँ गाड़ी खड़ी थी।

सुबह को एक भूसे की गाड़ी दिल्ली का फाटक पार करके बाहर निकल रही थी। उसे एक किसान का बेटा हाँक रहा था। उस किसान का और उसके बेटे का नाम आज इतिहास में नहीं मिलता।

जलयान से मुक्ति का प्रयास

के. वि. उपाख्य बापूराव घारपुरे

फ्रान्स में सावरकर जी ब्रिटेन के किनारे पर उतरने की सोच रहे थे। उनके मित्र और खासकर श्री हरदयाल जी सावरकर जी को बार-बार समझाते थे कि ऐसा साहस न करें। किन्तु शत्रु के चक्रव्यूह में घुसकर उसको तोड़ने की आकांक्षा रखने वाले सावरकर जी चुप बैठने वाले नहीं थे। उन्होंने ब्रिटेन की भूमि पर कदम रखे। तुरन्त उनको कैद किया गया। उनके मित्रों के मन में कल्पना दौड़ रही कि उन पर लंदन में अभियोग चलाया जायगा। इतने में समाचार मिला कि सावरकर जी को 'मोरिया' नौका से सीधे भ रत भेजा जा रहा है। कदाचित् प्रगतिशील अंग्रेज न्याय-मन्दिर में सावरकर जी जब खड़े होंगे, तब साम्राज्य की अधिक धज्जियाँ उड़ा देंगे, इस विचार से अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने उनको भारत भेजकर वहाँ दब्बू न्यायाधीशों के द्वारा कड़ी सजा दिलवाने की सोची होगी। प्रसिद्धि की महान् लहरों पर सावरकर जी को बैठने का मौका वे देना नहीं चाहते होंगे। 'मोरिया' नौका पर आरूढ़ होकर बंदी सावरकरजी ८ जुलाई १९१० को भारत की ओर चलने लगे।

लेकिन अब सावरकर जी के मन में कुछ और खलबली मच रही थी। बिजली की गति से एक नई कल्पना मन में चमक उठी। सावरकर जी ने स्वतंत्र फ्रान्स के किनारे पहुँचने की ठानी। नौका मार्सेल्स बंदरगाह के पास से भारत की ओर जा रही थी। बंदी सावरकर जी शौचस्थान गये। बाहर आरक्षक प्रहरी खड़ा था। 'मुझे शौच के लिए पाखाना जाना है;' सावरकर जी ने अंग्रेज अधिकारी से कहा। एक गोरे सैनिक ने सावरकर के हाथ की हथकड़ी व पैर की बेड़ी खोल दी। वे जहाज के पाखाने में घुस गए। अपना अनेक निकाल-कर अपना ओवर कोट पाखाने के द्वार पर टांगा। अपना जनेऊ निकाल-

शौचस्थान की खिड़की को नाप लिया। खिड़की तोड़कर अपना

शरीर संकुचित करके वहां से वे बाहर निकले और सागर में कूद पड़े। तैरकर फ्रान्स के किनारे लग गये। सामने ऊँची दीवार थी। खिड़की को फूटी काँच भुजाओं में घुसी थी। खून निकल रहा था। लेकिन तैरकर तट पर पहुँचकर दीवार पर चढ़ने वाले वीर जी के सामने अब केवल एक ही लक्ष्य था। सावरकर जी एक बार चढ़ गये, लेकिन दुर्भाग्य के कारण पानी में गिर पड़े। विघ्नबाधाओं को सामने देखते हुए फिर एक बार सावरकर जी दीवारपर चढ़ गये। वहाँ से कूदकर स्वतन्त्र फ्रांसकी भूमिपर सावरकरजी ने पैर रखा। वे अंदर की ओर भागने लगे। इतने में ब्रिटिश नौका से रक्षकों की टोली छोटी नौका में बैठकर सावरकरजी का पीछा करने के लिए उनके पास आ पहुँची। सावरकरजी 'पुलिस' 'पुलिस' पुकार रहे थे। वे एक आरक्षक के पास पहुँचे, लेकिन फ्रान्सीसी आरक्षक सावरकरजी की सहायता कर न सका। सुवर्ण मुहरों से उसकी मुठ्ठी भर दी गयी। उसने अपना कर्त्तव्य नहीं किया। बंधनमुक्त सावरकरजी फिर बंदी हो गये। मुक्ति कुछ क्षणों की ठहरी। कैदी सावरकर को बाँधकर फिर 'मोरिया' नौका पर चढ़ाया गया।

मुक्तिप्रयास में मृत्यु

सुखदेव राज

भगतसिंह और दत्त को जेल से छुड़ाने की कोशिश चल रही थी। आजाद, भगवतीचरण, यशपाल, धनवन्तरि और बच्चन सभी लोग बहावलपुर रोड वाले बंगले में जुटे थे। दीदी और भाभी भी वहीं थीं। इस योजना के लिए बम बनाए गए थे। उनकी परीक्षा करने के लिए भगवतीचरण और वैशम्पायन के साथ मैं रावी नदी के किनारे गया। बम में या ट्रीगर में कुछ नुक्स था। जैसे ही भगवती भाई ने बम फेंकने के लिए अपना दाहिना हाथ उठाया, बम उनके हाथ में फट गया। एक हल्की चीख उनके मुँह से निकली और पत्थरों की

जिस महारक्षीवारी के ऊपर ये खड़े थे, गिर गए। बच्चन (वैशम्पायन) और मैं दोनों दौड़े और उनको सहारा देकर जमीन के ऊपर लिटा लिया। दोनों हाथ कटे हुए थे। खून हाथों से निकल रहा था। लहू और मांस की बोटियां हाथों से लटक रही थी। शहीद का खून चाटने के लिए इधर-उधर से कीड़े जमा हो रहे थे। ऊपर से मक्खियाँ उनको परेशान कर रही थीं। उनका गला सूख रहा था। उन्होंने पानी मांगा। बच्चन पास ही गड्ढे में से मैला पानी लेने दौड़ा। कोई बर्तन था नहीं। कपड़ा फाड़कर गीला किया और भगवती भाई के मुंह में पानी टपकाने लगा।

हम शहर से बहुत दूर जंगल में नाव लेकर गए थे। बच्चन (वैशम्पायन) नाव चलाना नहीं जानता था। वापसी का रास्ता भी नहीं जानता था। बच्चन ने कहा—"भैया (आजाद) को फौरन सूचना दे आओ। मैं भगवती भाई के पास बैठता हूं।"

मेरे बाएं पैर में भी बम का टुकड़ा घुस गया था। मेरे पैरों और टांगों में खून ही खून हो रहा था। भगवती भाई को उठाने में उनके शरीर से बहता हुआ रक्त भी मेरे कपड़ों में लग गया था। एक क्षण मैंने भगवती भाई की तरफ देखा। उनके चेहरे पर पसीना और खून दिखाई दे रहा था। फिर मैं दौड़ा जंगल से बाहर बस्ती की ओर।

जंगल से निकलकर सड़क पर आया। एक तांगा मिला। उसको लेकर बहावलपुर रोड वाले बंगले में घुसा। आजाद और यशपाल बाहर निकले। मेरी दशा देखकर समझ गए कि दुर्घटना हो गई है। दोनों सहारा देकर मुझे अन्दर ले गए। सबके मुंह पर एक प्रश्न था। क्या हुआ? संक्षेप में मैंने घटना का ब्योरा दिया। यशपाल और छैलबिहारी मदद के लिए गए। मगर जख्म गहरे थे। अतः भगवतीचरण जी की लीला समाप्त हो चुकी थी।

मरने से पहले भगवती भाई ने एक ही बात कही—"भगतसिंह को छुड़ा नहीं सके। काश! यह दुर्घटना दो दिन बाद होती।" *

देश-हित देश-त्याग

धर्मपाल शास्त्री

स्टेशन छोटा था और रात का समय। खोंचे वालों की चहल-पहल ठण्डी पड़ चुकी थी और बेंचों पर बैठे हवाखोर भी उठ-उठकर अपने घरों को जा चुके थे। जब स्टेशन बिल्कुल सूना हो गया और कलकत्ता से गाड़ी आने में केवल एक मिनट शेष रह गया तो काले रंग की मोटर स्टेशन के फाटक पर आकर रुकी। उसमें से जो व्यक्ति निकले वे एक मौलवीसाहब थे। दाढ़ी लम्बी पर मूँछ नदारद। सिर पर तुर्की टोपी, कंधों पर तहदार अचकन और नीचे तंग चूड़ीदार पायजामा। मोटर में सिवाय ड्राइवर के कोई दूसरा आदमी नहीं था। इधर मौलवी साहब कदम बढाते हुए प्लेटफार्म तक आ पहुँचे, उधर रेलगाड़ी भी ठीक उसी सेकिंड आई, रुकी और चल दी। स्टेशन के किसी अधिकारी की नजर मौलवी साहब पर न पड़ी। वे लपककर दूसरे दरजे में चढ़ गए। ड्राइवर उन्हें बिदा करने आया था, पर मुँह से बोलकर किसी ने कुछ न कहा। बस आँखों ही आँखों में बिदाई हो गई। गाड़ी चल पड़ी।

उसी डिब्बे में एक सरदार जी भी थे। मौलवी साहब को वे देर तक देखते रहे—'घूरते रहे' कहें तो झूठ न होगा। मौलवी साहब ने उनकी ओर कोई ध्यान न दिया। वे उसी तरह भाव-मग्न बैठे रहे और खिड़की से बाहर अँधियारे में जैसे उनकी आंखें कुछ खोज रही थीं। उनकी वह चुप्पी सरदार जी को अखरने लगी। जब उनसे न रहा गया तो वह उठकर मौलवी साहब के पास आकर बैठ गए और बहुत धीमे स्वर में उन्होंने पूछा—'जैसे कहीं देखा है मैंने आपको?'

'होगा।' मौलवी साहब के होंठ एक बार हिले और घुट गए।

'आपका शुभ नाम?' सरदार जी एक कदम और आगे बढ़े।

'जियाउद्दीन।' मौलवी साहब का उत्तर था।

'काम क्या करते हैं !' सरदार जी ने दबी जबान से पूछा।

'बीमा कम्पनी का संचालक हूँ।' मौलवी साहब ने वही नपा तुला जवाब दिया।

बातें खत्म हो गईं पर गाड़ी चलती रही। सुबह जब गाड़ी पेशावर पहुँची, तो एक पठान युवक स्टेशन पर पहले से मौजूद था। फाटक पर पहले से एक मोटर खड़ी थी—काली मोटर। मौलवी साहब को वह ले उड़ी और जिस घर के सामने जाकर खड़ी हुई, वह मनुष्य के मन के समान रहस्यमय था। ऊपर से सीधा और सरल मकान, पर अन्दर से एक छोटा-सा किला। नीचे एक तहखाना भी था। मौलवी साहब ने उसी मकान के रहस्यमय कमरे में प्रवेश किया। दरवाजा बन्द हो गया।

तीसरे दिन जब दरवाजा खुला तो मौलवी के बदले एक कबाइली पठान निकला, टांगों में सलवार, गले में लम्बा घुटनों तक झूलता हुआ कुर्त्ता और उस पर रेशमी वास्कट, सिर पर पठानों जैसा कुलाह और ऊपर लूंगी। घर के किसी आदमी को न उसके आने का पता चला था और न अब जाने का। केवल घर के मालिक को खबर थी और कार के ड्राइवर को। उसी दिन रहस्यमय ढंग से यह कार भी गायब हो गई। पता नहीं कहाँ ? अब जब वह लौटी तो कार खाली थी। खान उसमें न था।

बात यह थी कि उसे काबुल जाना था और सीमा पार करने की इजाजत उसके पास नहीं थी। आगे रास्ता भी पैदल और उजाड़ था, डाकू कभी भी गोली मार सकते थे। लोहा लोहे को काटता है—खान ने उसी इलाके के एक रहमतखाँ से साँठ गाँठ की। 'मैं सब निबट लूँगा—' रहमतखां ने आश्वासन दिया।

खान और रहमतखाँ दिन-भर चलते रहे। थककर चूर हो गए, पर चलते रहे वे तब तक जब तक अड्डाशरीफ न पहुँच गए। एक मुसाफिर ने 'अस्सलामालेकुम' बुलाई। खान ने माथे को हाथ से

झुककर सलाम स्वीकर किया।' कहाँ जाएँगे आप? उसने पश्तो में पूछा। खान चुप रहा।

रहमतखां ने पश्तो में उत्तर दिया—'मेरा भाई है यह, गूँगा है बेचारा, बोल नहीं सकता।'

'खुदा हाफिज।' कहकर मुसाफिर ने रुखसत ली।

खान मुस्करा दिया।

रहमतखाँ कुछ देर के लिए गायब हो गया। जब वह लौटा तो उसके साथ तीन पठान थे—बन्दूकों-कारतूसों से लैस। रहमत लौट गया और वे तीनों पठान खान साहब को साथ लेकर बीहड़ जंगल में घुस पड़े। यहाँ से लालपुरा तक पूरे एक दिन का पैदल रास्ता है। जंगल भयानक तो था, पर रास्ते में कोई खास घटना नहीं घटी। लालपुरा के खान को वैसे भी इनके पहुँचने की पहले ही खबर थी, क्योंकि इनके पहुँचने पर लालपुरा में उन्हें एकदम किसी गुप्त स्थान में छिपा दिया गया और जब अगले दिन ये चलने लगे तो लालपुरा के खान ने सिफारिश का एक पत्र भी लिखकर उन्हें दिया—

'मैं प्रमाणित करता हूँ कि पत्रवाहक साहब जियाउद्दीनखाँ कबाइली इलाके के रहने वाले हैं और मेरे परम मित्र हैं। वे 'सखी साहब' की यात्रा पर जा रहे हैं। अफगान सरकार से मेरा अनुरोध है कि मार्ग में इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न अनुभव होने देवें। मैं अनुगृहीत हूँ।'

हस्ताक्षर
खान लालपुरा

कबाइली इलाका पार करने में इस पत्र ने बड़ी मदद दी, पर काबुल नदी मार्ग में पड़ती थी। उसके किनारे-किनारे तैनात कर्मचारियों ने पार उतरने की आज्ञा देने से साफ इन्कार कर दिया। तीनों पठानों ने आपस में कुछ कानाफूसी की और न जाने कहाँ से तीन मश्कें भी पहुँच गईं। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी और तीनों

सी हवा अंग-अंग के आर-पार निकलती सी सरसरा रही थी। फिर भी चारों ने मशकों पर लेटकर ही नदी पार की। संयोगवश नदी पार काबुल जाने वाले कुछ ट्रक खड़े हुए थे। पठानों ने बातों ही बातों में ट्रक-ड्राइवर से सौदा पटा लिया। चारों जने पीपे-बोरियों के नीचे छिपकर काबुल पहुंच गए।

अब क्या करें? कहां, किसके घर ठहरा जाए? बहुत ढूंढने पर एक सराय का पता चला। रहने को जगह भी मिल गई और खाने को मक्का की रोटी थी। खान और पठानों ने छककर खाया और लम्बी तानकर सो गए। सुबह उठे तो सामने पुलिस का सिपाही खड़ा था। उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी—

कौन हो तुम? कहां से आए हो? कहां जाओगे? कब से यहां ठहरे हो, कब जाओगे?

एक पठान ने धीरज से कहा—'भाई! यह मेरा गूंगा-बहरा भाई है। मैं इसे 'सखी साहब' ले जा रहा हूं। आजकल बहुत बर्फ पड़ गई है और रास्ते बन्द हैं, इसलिए रुक गए हैं। बस रास्ता खुलते ही चल देंगे।'

सिपाही को सन्देह हुआ, बोला—'तुम सब कोतवाली चलो।'

पठान ने दो रुपए निकाल कर चुपके से उसकी मुट्ठी में थमा दिए। वह चुपचाप चला गया। तीन दिन बाद वह फिर आया। अबकी बार १७ रुपए का सौदा ठहरा। अगले दिन वह फिर आ धमका और लगा अंटसंट बकने। खान ने अपनी घड़ी उतार कर दे दी और पीछा छुड़ाया।

उसी समय खान का एक सशस्त्र पठान दौड़ा हुआ आया और हांफते-हांफते बोला—'गजब हो गया। पुलिस को आप पर खुफिया जासूस होने का शक हो गया है। यहां रहे तो मुसीबत रहेगी। अब

वे निकले। रास्ते में जीवनलाल का मकान पड़ता था। इटली के राजदूत का वहाँ आना-जाना था। जब राजदूत की मोटर निकली तो एक पठान ने उन्हें रोकने का इशारा किया। मोटर रुक गई।

राजदूत ने पूछा—'क्या बात है?' पठान ने कान में कहा—'भारत के एक महान क्रांतिकारी नेता यहाँ आए हुए हैं।'

राजदूत चौंका—'कौन?' पठान—'सुभाष बाबू!' राजदूत ने पूछा 'कहाँ हैं वे?' पठान ने खान की ओर संकेत कर दिया। राजदूत ने खान को ओर विस्मय से देखा और नम्रता से हाथ जोड़ दिए। राजदूत की पत्नी भी साथ थी। उसने पूछा—'हाव कैन वी हैल्प यू, सुभाष बाबू?'

खान ने संक्षेप में बताया कि 'उन्हें पासपोर्ट की आवश्यकता है, ताकि वे मास्को पहुँच सकें।'

पासपोर्ट बन गया और सुभाष बाबू उर्फ खान की विदाई का क्षण समीप आ पहुँचा। नहीं-नहीं। अब उनका नाम 'मिस्टर कंटेरा-इन' था, यही नाम पासपोर्ट पर लिखा था। खैर, परसों के सुभाष, कल के गूँगे खान और आज के मिस्टर कंटेराइन मोटर द्वारा काबुल से रूस की सीमा में पहुँचे और वहाँ से सीधे बर्लिन—जर्मनी की राजधानी में।

एक दिन सहसा-बर्लिन रेडियो से सुभाष बाबू की आवाज सुन-कर अंग्रेज सरकार दंग रह गई। पर अंग्रेज बेबस थे। तलवार म्यान से बाहर निकल चुकी थी।

●

पुरजा-पुरजा कटि मरे

कमला मघोक एम. ए.

१२ सितम्बर, १९६५

"हर-हर महदेव" के नारों से आकाश गूंज उठा। ऐसा लगता था, मानो शंकर अपना नेत्र खोलने से पहले हुंकार रहे हों।

आज पूरी रेजिमेंट ने स्यालकोट सेक्टर के लिए प्रस्थान करना था। हर जवान के हृदय में उमंग थी, उत्साह था।

रास्ते में स्टेशन पर अपार जनता ने उनका स्वागत किया। आरतियां उतारी गईं, तिलक लगाए गए, मुंह मीठे कराए और मंगल मनौतियां मनाई गईं। भाई-बहिनों के इस असीम स्नेह ने जवानों के उत्साह को दूना कर दिया। 'माँ की रक्षा' का प्रश्न था। ावश्य आशीर्वाद पाकर देश की तरुणाई उस पथ पर बढ़ चली थी।

आज १३ सितम्बर था। रेजिमेंट स्यालकोट पहुँच चुकी थी। सभी धूप में बैठे थे। इन्फैंटरी मेजर शर्मा ने अंगड़ाई ली। तभी उनको याद आई उस नवोढ़ा की जिसके हाथों की मेंहदी अभी पूरी तरह सूखा नहीं था। सोचते-सोचते दिल में बुदबुदा उठे—

'क्या सोचती होगी आशा? किससे पाला पड़ा है! पता नहीं क्या मनौतियां मनाती होगी?—परन्तु हम तो फौजी ठहरे! युद्ध ही हमारा जीवन है।'

आशा से ध्यान हटा तो एकवर्षीया मनु का ध्यान हो आया। कल ही उसके लिए वे कितनी मिठाई और फल लेकर गए थे। परन्तु आशा और मनु पहले ही अन्य फौजी अफसरों के परिवारों के साथ घर रवाना हो चुकी था।

मेजर सुरेन्द्र शर्मा जानता था कि उसकी आशा भोली है। उस- ... का भार बना रहे, इसलिए उसने रणभूमि में उतरने एक तार दे दी—

"आशो ! चिन्ता न करना। मैं सकुशल हूं।"

फिर वह अचानक ऐसे खड़ा हो गया मानो एक क्षण में ही आशा को पूर्णतया भूल गया हो।

शत्रु की शक्ति का पता लगाया। फिर फौजों को यथास्थान नियत किया। इसी काम में उसका सारा दिन बीत गया। सायंकाल वह सब जवानों के पास स्वयं गया और हरेक को थपकी देकर बोला—

'वीरो ! मां के दूध की लाज बचानी है।' उत्तर में हर वीर की वाणी इसी भाव को लिए उठती—

'पुरजा-पुरजा कटि मरे तऊं न छोड़ें खेत।'

अगले दिन मेजर शर्मा की टुकड़ी का शत्रु से मुकाबला था। इधर सवा सौ जवान थे, पर उधर डेढ़ हजार! इधर सीमित हथियार थे, पर उधर प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्र थे। ऐसा लग रहा था मानों चिड़िया की बाज से लड़ाई हो।

प्रातः हुई। योजना के अनुसार मेजर शर्मा की टुकड़ी ने दुश्मन पर धावा बोल दिया। पहले धावे में सेकड़ों शत्रुओं के रुण्डों-मुण्डों से धरती लाल हो उठी। पर चिरकाल से प्यासी रणचण्डी की प्यास उग्रतर हो गई।

दुश्मन के टैंक दनादन गोले उगल रहे थे। मेजर शर्मा डटे रहे। उनके जवान भी डटे हुए थे। 'सवा-लाख से एक लड़ाऊं' वाली बात प्रत्यक्ष हो रही थी।

मेजर शर्मा की थपकी पाए जवानों में अपूर्व शौर्य था। उनके विश्वास के सामने शर्मा को यह कभी अनुभव नहीं हुआ कि शत्रु की संख्या बहुत अधिक है या उसके पास इतने टैंक हैं।

शत्रु हैरान था कि मुट्ठी भर लोग उनके काबू नहीं आ रहे थे। शत्रु ने पैंतरा बदला। अब उनका लक्ष्य शत्रु की सेना नहीं, अपितु सुरेन्द्र शर्मा हो गए।

अचानक एक गोला आया। मेजर सुरेन्द्र के गले को चीरता हुआ निकल गया। रक्त की धारा बह निकली। पर हिम्मत में कमी नहीं आई। यह स्पष्ट हो रहा था कि मौत ने मुँह की खाई है।

नेता का रक्तस्राव देखकर जवानों का उत्साह बढ़ गया। अपने जवानों की वीरता देखकर मेजर सुरेन्द्र शर्मा के चेहरे की मुस्कान बराबर बढ़ रही थी।

तभी एक गोला और आया। इस बार लगा वह मेजर के पेट में। खून का फव्वारा छूट पड़ा। कुछ माँसपेशियाँ बाहर निकल आईं।

लेकिन साहस के उस पुतले में कोई अन्तर नहीं था। वह डटा रहा। वह अब भी शत्रु से जूझ रहा था। दो-दो शत्रुओं से उसे लोहा लेना पड़ रहा था। एक तरफ मौत से लड़ाई थी और दूसरी ओर उन नौकर-सिपाहियों से।

दो गोले भी उस वीर को समाप्त नहीं कर सके थे। गोले फेंकने वाले शर्म महसूस कर रहे थे। पर…आ… ! यह क्या !

एक गोला आया, लगा टाँगों पर। टाँगे धड़ से अलग हो गईं। जख्मी पुत्र को 'धरती माता' ने अपनी गोद में समेट लिया। वीर माँ की गोद में सिर रखकर सदा के लिए सो गया।

लेकिन कौन कहता है मेजर सुरेन्द्र मर गया ? उसके जीवन दीप की लौ अधिक प्रखर हो उठी है। पहले वह केवल सेनानियों को मार्ग दिखाती थी, परन्तु अब वह हर देशवासी का मार्ग प्रकाशित करेगी।

स्वातन्त्र्य-प्रेरणा-स्रोत

महात्मा गांधी

मिथिलेश मारंग एम. ए.

दुबला शरीर, घुटनों तक धोती, कन्धों पर खद्दर की चादर इस

था एक शब्द गलत था। अध्यापक ने दूसरे बच्चों से नकल करने का संकेत किया, पर सत्य का पुजारी ऐसा नहीं कर सकता था। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया।

जब यह तेरह वर्ष के हो गये, तभी इनका विवाह कस्तूरबा नामक लड़की से कर दिया गया। उस समय ये हाई स्कूल के विद्यार्थी थे। उच्चशिक्षा प्राप्त करने के लिये ये जब इग्लैंड जाने लगे तो माँ को माँस, मदिरा और पर-स्त्री से दूर रहने का वचन दे गये थे। इस प्रतिज्ञा को उन्होंने संकटों का सामना करके भी निभाया। तीन वर्ष के पश्चात् जब गांधी जी स्वदेश लौटे तो उन्होंने वकालत प्रारम्भ की।

कुछ दिन पश्चात् उन्हें एक मुकदमे की पैरवी के लिए दक्षिणी अफ्रीका जाना पड़ा। वहाँ भारतीयों की दुर्दशा से उनके दिल को गहरी ठेस लगी। वे भारतीय थे इस कारण उन्हें नागरिक अधिकार न दिये गये। काले और गोरे के भेद-भाव ने तो उनका दिल ही तोड़ दिया। वहाँ के गोरे लोग उन्हें 'कुली' कहकर पुकारते थे। गाड़ी के पहले दर्जे का टिकट होने पर भी उन्हे पहले दर्जे में नहीं बैठने दिया गया। यह सब उनके लिये असह्य था। इन अत्याचारों को बन्द करने के लिए उन्होंने सत्याग्रह का मार्ग अपनाया। अन्ततः दक्षिण अफ्रीका की सरकार को झुकना पड़ा। भारतीयों को मानवीय अधिकार प्राप्त हुए।

भारत लौटने पर गांधी जी के हृदय में देश-स्वतन्त्रता की अग्नि भड़क उठी और उन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने का दृढ़ संकल्प किया। भारत के बच्चे-बच्चे में यह चिंगारी फैलकर शोला बनती गई। सदियों के पराधीन भारत ने करवट ली। गांधी जी ने इस समय हुए प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों की सहायता की और अंग्रेजी फौजों के विजयी होने पर भारत की स्वतन्त्रता मांगी। पर अंग्रेजी सरकार ने स्वतन्त्रता के बदले 'रोलट-एक्ट' पुरस्कार के रूप में दिया, जिसका फल था जलियांवाला बाग की भयंकर नर-हत्या!

अहिंसा का पुजारी यह भयंकर नर-संहार देखकर शान्त न रह

सका। मानव के प्रति मानव की ऐसी घृणा देख वह विद्रोह से भड़क उठा। पर उसका मार्ग हिंसा का मार्ग नहीं था। वह तो किसी भी कीमत पर मानवता की अमूल्य निधि अहिंसा को खोना नहीं चाहता था। उस शांति के अवतार के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ। सरकारी नौकरियों और विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया गया। विदेशी कपड़े अग्नि की भेंट कर दिये गये।

अन्ततः गांधी जी के प्रयत्नों से १५ अगस्त १६४७ ई० को भारत स्वतन्त्र हुआ। भारतीय जनता की श्रद्धा और भक्ति ने गांधी जी को महात्मा के उच्च आसन पर आसीन किया। वे सबके पूज्य बन गये। इसीलिये वे भारत के राष्ट्रनिर्माता, राष्ट्रपिता कहलाये।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए उन्होंने अनथक परिश्रम किया। इनका विचार था कि हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सब एक ही परिवार के सदस्य हैं। सब एक समान हैं। कोई ऊँचा-नीचा नहीं है। वे हरिजनों के परम हितैषी थे और समाज में उन्हें प्रतिष्ठित स्थान दिलवाने के लिए भी इन्हें कम कष्ट नहीं उठाने पड़े। ये छूआछूत, जाति-पांति, ऊँच-नीच का अन्त पूर्णतया करना चाहते थे। वे भंगी के साथ खाना खाने में भी नहीं हिचकिचाते थे।

इनके स्वप्नों का भारत ऐसा भारत था, जहाँ धनी और निर्धन, स्त्री और पुरुष, ऊँची और नीची जाति में कोई भेद न हो। सब धर्मों का सम्मान करना वे अपना कर्तव्य समझते थे। उनके विचार में सब धर्म एक ही ईश्वर तक पहुँचने के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। मंजिल सबकी एक है, रास्ते-अलग-अलग हैं। खादी पहनने और 'सादा जीवन उच्च विचार' में उनका विश्वास था। वे नशीली वस्तुओं के विरोधी थे। गांधी जी यदि कुछ और वर्ष जीवित रहते तो अपने स्वप्नों को साकार कर पाते, परन्तु भारत का दुर्भाग्य था कि समय ने उनका साथ न दिया। ३० जनवरी १६४८ को उनकी हत्या कर दी गई।

झाँसी की रानी—लक्ष्मीब

तनसुखराम गु

अंग्रेजों से देश को स्वाधीन करने के लिए पहली लड़ाई
१८५७ में लड़ी गई। इस लड़ाई में बहुत-से स्त्री-पुरुषों ने
जीवन की आहुति दी। उन आहुति देने वालों में, झांसी की रा
लक्ष्मीबाई का त्याग, अदम्य साहस और अद्भुत वीरता भार
इतिहास के सुनहरे पन्नों में अंकित रहेगी।

लक्ष्मीबाई का जन्म १३ नवम्बर १८३५ को काशी में हुआ
इनका जन्म का नाम मनुबाई, पिता का नाम मोरोपन्त तथा मा
का नाम भागीरथी था। मनुबाई अभी शिशु ही थी कि उस
माता का देहान्त हो गया। नटखट और चंचल प्रवृत्ति के कार
लोग उसे 'छबीली' कहने लगे। छबीली का बाल्यजीवन पेश
बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना जी और राव जी के साथ, जो
आयु में उसके समान थे, युद्ध और घुड़सवारी करने तथा शिका
खेलने में बीता।

राजज्योतिषी तांत्या के अनथक प्रयत्न से सात वर्षीय मनुबा
का विवाह झाँसी के वृद्ध राजा गंगाधरराव के साथ हो गया।
मनुबाई झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई बन गई। कुछ वर्ष पश्चा
लक्ष्मीबाई के गर्भ से पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ, परन्तु दुर्भाग्यवश
मास की अल्पायु में ही वह मर गया।

बालक की मृत्यु के दुःख में महाराज का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन
गिरने लगा। जब उन्हें अपने जीवित रहने की आशा न रही, तो
उन्होंने पांच वर्षीय बालक आनन्दराव को शास्त्रोय विधि से गोद
ले लिया। इधर महाराज की मृत्यु हो गई, उधर अंग्रेजों ने रानी
लक्ष्मीबाई के पर्याप्त प्रयत्न करने पर भी उसे पुत्र गोद लेने की

वीकृति न दी। एक राजाज्ञा द्वारा झाँसी का राज्य बुन्देलखण्ड के ॉलिटिकल एजेन्ट के हवाले कर दिया गया।

अंग्रेजों के दमन एवं अत्याचार के विरुद्ध सन् १८५७ में सैनिकों ो विद्रोह किया। विद्रोह की यह भावना सम्पूर्ण देश में फैल गई। वेद्रोही दल अथवा स्वतन्त्रता-सेनानी जब झाँसी पहुँचे तो रानी लक्ष्मीबाई ने अपने सम्पूर्ण आभूषण देकर उनका उत्साह बढ़ाया।

भारत में जयचन्दों की कभी कमी नहीं रही। सदाशिव और ओरछा के राजा नत्थेखां ने लक्ष्मीबाई पर आक्रमण कर झाँसी का राज्य हस्तगत करने का दुस्साहस किया, परन्तु इन दोनों को मुंह की खानी पड़ी। अपनी इस पराजय से चिढ़कर नत्थेखां ने अंग्रेजों को झाँसी पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। परिणामस्वरूप सर ह्यूज ने सर हैमिल्टन के साथ ३० हजार फौज लेकर झाँसी को घेर लिया।

रानी ने पहले से युद्ध की तैयारी कर रखी थी। अतः चार दिन तक अंग्रेजों का एक भी सैनिक किले तक न पहुँच सका। दुर्भाग्यवश एक तो बारूदखाने में आग लग जाने से और दूसरे दुलारे नामक एक देशद्रोही सरकार द्वारा ओरछा फाटक पर सरलता से चढ़ने ा मार्ग बता देने से झाँसी का सूर्य अस्त हो गया और वह अंग्रेजों के हाथ में चली गई।

लक्ष्मीबाई ने फौलादी कवच धारण किया, पुत्र दामोदर(आनंदराव) को पीठ से बाँधा, हाथ में खड्ग लिया और वीरों सहित कालपी के लिए चल पड़ी अंग्रेजों ने महारानी का पीछा किया। मार्ग में कई स्थानों पर अंग्रेजों से टक्कर हुई। कालपी पहुँचकर भी अंग्रेजों को तोपों के आगे रानी की सेना के पैर उखड़ गये। तब कालपी से निकलकर महारानी ग्वालियर की ओर गई और वहाँ के राजा जियाजीराव को परास्त कर महारानी ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया।

इस बार अंग्रेजों ने एक बड़ी सेना लेकर ग्वालियर पर चढ़ा

कर दी। रानी लक्ष्मीबाई और उनकी दो सेविकाएं काशीबाई और सुन्दरीबाई ने इस बार युद्ध का दृढ़ मोर्चा बनाया हुआ था। तीसरे दिन यहां भी युद्ध की दशा बदल गई।

महारानी ने प्राणों को हथेली पर रखकर युद्ध करना शुरू किया। मारकाट करती हुई महारानी रामचन्द्र, रघुनाथसिंह सुन्दरीबाई और काशीबाई के साथ किसी प्रकार अंग्रेजों के मोर्चे को तोड़कर कर निकल भागी। अंग्रेज सैनिकों ने महारानी का पीछा किया। एक अंग्रेज सैनिक ने जो महारानी के समीप पहुँच चुका था, गोली चलाई। दुर्भाग्य वश यह गोली महारानी को लग गई। फिर भी महारानी आगे बढ़ती चली गई। आगे एक विशाल नाला आ गया। घोड़ा नया होने के कारण उसे पार न कर सका। इस बीच अंग्रेज सैनिक भी वहाँ आ पहुँचे। घायल रानी को विवशता-वश युद्ध करना पड़ा। रानी बुरी तरह खून से लथपथ हो चुकी थी। सौभाग्य से महारानी के साथी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आते ही भयंकर मार-काट शुरू कर दी।

अकस्मात् काशीबाई का ध्यान घायल महारानी की ओर गया। वह तुरन्त रानी के पास पहुँची और उन्हें सहारा देकर एक झोंपड़ी में ले गई। कुछ समय पश्चात् रानी की मृत्यु हो गई। इस प्रकार २३ वर्ष की अल्पायु में १८ जून, १८५८ को वे स्वर्ग सिधारीं। झोंपड़ी के पास शीघ्र ही रानी का दाह-संस्कार कर उनके पवित्र शरीर की विदेशियों के अपवित्र हाथों से रक्षा की गई। कहते हैं कि अब उसी स्थान पर झांसी की रानी का स्मारक बना हुआ है, जो आज भी भारतवासियों के लिए श्रद्धा और स्फूर्ति का स्रोत है।

स्वातन्त्र्य-रक्षक श्री लालबहादुर शास्त्री

श्री सुन्दरलाल डोमाल एम. ए.

आधुनिक भारत के निर्माण में जिन महापुरुषों का हाथ है, उनमें स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। वे एक ऐसे ज्वलन्त नक्षत्र के समान स्वतन्त्र भारत के भाग्य-गगन पर चमके थे, जो ध्रुव की भांति अमर बन गए।

श्री लालबहादुर शास्त्री का जन्म २ अक्तूबर, सन् १९०४ को बनारस के निकट मुगलसराय नाम के स्थान पर एक निम्नमध्य-वर्गीय कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता, श्रीशारदाप्रसाद साधारण अध्यापक थे तथा इनकी माता का नाम था श्रीमती राम-दुलारी। अभी शास्त्री जी डेढ़ वर्ष के हो थे कि इनके पिता का देहांत हो गया तथा समस्त परिवार को वाध्य होकर आजीविका की समस्या के कारण मुगलसराय छोड़कर इनके मामा के यहाँ राम-नगर आना पड़ा। परिवार की आर्थिक स्थिति अनुकूल नहीं थी। फलतः इनका पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था भी अत्यन्त गरीबी में ही सम्पन्न हुई। आरम्भिक शिक्षा तो इन्हें घर पर एवं गाँव में ही मिली, किन्तु हाई स्कूल की परीक्षा इन्होंने भार-तेन्दु हरिश्चन्द्र हाई स्कूल काशी से उत्तीर्ण की। इनके हाई स्कूल-जीवन की एक घटना अति प्रसिद्ध है कि एक बार पैसे न होने पर घर पहुँचने के लिए इन्हें तैर कर नदी पार करनी पड़ी थी।

जैसे-तैसे हाई स्कूल की परीक्षा पास कर ये 'काशी विद्यापीठ' में उच्चशिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए। इन्हीं दिनों ये राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के भाषणों से प्रवाहित होकर स्वतन्त्रता-आंदोलन में कूद पड़े। इन्होंने गांधी जी के असहयोग-आंदोलन में भाग लिया और इन्हें १७ वर्ष की आयु में ढाई वर्ष के लिए कारावास भेज दिए गया। जब

ये जेल से मुक्त होकर आये तो पुनः इन्होंने 'विद्यापीठ' में पढ़ाई आरम्भ की और सन् १९२५ में 'काशी विद्यापीठ' को सर्वोत्तम उपाधि 'शास्त्री' प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

अध्ययन समाप्त कर शास्त्री जी पुनः राष्ट्र-आंदोलनों में जुट गए। १९२६ में वे 'सर्वेन्टस् आफ पीपल सोसाइटी' के स्थायी-सदस्य बन गए और आजीवन राष्ट्रसेवा का व्रत लेकर रचनात्मक एवं व्यावहारिक रूप में कांग्रेस के सिपाही बन गए। अपने सरल विनम्र एवं मधुर व्यवहार द्वारा शीघ्र ही जनता के हृदय हार बन गए। आरम्भ में उनका मुख्य कार्य-क्षेत्र इलाहाबाद रहा। यहाँ पहले जिला कांग्रेस कमेटी के महामंत्री और बाद में १९३० से १९३६ तक छः वर्ष प्रधान भी रहे। सन् १९३०, १९३२, १९४१ तथा १९४२ में आप जेल भी गए।

सन् १९३७ में आप उत्तर-प्रदेश विधान-सभा के सदस्य चुने गए। जब स्वर्गीय गोविन्दवल्लभ पन्त मुख्यमंत्री बने, तो शास्त्री जी पन्त-मन्त्रि-मण्डल के संसदीय-सचिव निर्वाचित हुए। इसकी कार्य-कुशलता के परिणामस्वरूप इन्हें बाद में उत्तर-प्रदेश मन्त्रिमण्डल में क्रमशः गृहमंत्री एवं यातायात मंत्री पदों पर नियुक्त किया गया।

अब तक शास्त्री जी का व्यक्तित्व और कार्य दोनों ही पूर्णतया प्रकाश में आ चुके थे और वे जनता तथा नेताओं के श्रद्धा एवं विश्वास के पात्र बनते जा रहे थे। फलतः सन् १९५१ में इन्हें राष्ट्रीय कांग्रेस का महामंत्री बना दिया गया। बाद में ये राज्य-सभा के सदस्य निर्वाचित हुए और केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में रेल-मंत्री नियुक्त किए गए, किन्तु कुछ ही समय के अनन्तर दुर्भाग्य से १९५६ में एक भयंकर रेल दुर्घटना घटी, जिससे उनके हृदय पर बड़ा आघात हुआ और प्रत्यक्ष में अपना उत्तरदायित्व न होते हुए भी नैतिक रूप में उन्होंने इसे ... अपराध स्वीकार किया और मन्त्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। ... से वे जनता के और भी अधिक विश्वास एवं श्रद्धा के पात्र

बन गए। पुनः १९५८ में वे वाणिज्य विभाग में उद्योग-मंत्री बनाए गए तथा श्री गोविन्दवल्लभ पंत की मृत्यु पर केन्द्रीय सरकार के गृह मंत्री पद पर नियुक्त किये गए। 'कामराज-योजना' के अंतर्गत वे स्वेच्छा से इस पद से भी मुक्त हो गए।

इसी समय देश के तत्कालीन प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल का स्वास्थ्य गिरता गया और उन्होंने शास्त्री जी को अपनी पैनी दृष्टि से परख कर बिना-विभाग के मंत्री के रूप में अपने मंत्रिमंडल में ले लिया तथा नेहरू जी के स्वर्गवास होने पर जनता द्वारा भारत के द्वितीय प्रधान मंत्री चुने गए।

शास्त्री जी केवल १८ मास तक ही प्रधान मंत्री पद पर रह सके, किंतु इस बीच उन्होंने पाकिस्तान के आक्रमण एवं देश में दुर्भिक्ष के कारण पड़े अन्न-संकट का बड़ी कुशलता से सामना ही नहीं किया, बल्कि दोनों क्षेत्रों में विजय भी पाई।

रूस के निमंत्रण पर शास्त्री जी पाकिस्तान से समझौते के लिए ताशकंद गए और उनके ही प्रयत्न से पाकिस्तान एवं भारत में समझौता हो सका, किंतु विधाता को मंजूर कुछ और ही था। ११ जनवरी, १९६६ को रात्रि के डेढ़ बजे ताशकन्द में ही उनका देहांत हो गया।

शास्त्री जी भारत के उन महान् सुपूतों में से थे, जिन्होंने अपने त्याग, बलिदान, चरित्र, निष्ठा और सेवा-भाव द्वारा भारत को विश्व में ऊँचा उठाया। वे सादगी एवं सरलता की मूर्ति थे। मधुर-भाषण और मितभाषण उनका विशेष गुण था। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् का यह कथन उचित ही है कि 'शास्त्री जी गरीबी में जन्मे और गरीबी में मरे', ब्रिटेन और रूस उनकी सादगी, सरलता और सज्जनता पर बड़े मुग्ध थे। सदाचार, ईमानदारी और दृढ़ता शास्त्री जी के विशेष गुण थे। छोटे से शरीर में वे विशाल आत्मा को छिपाए थे। वास्तव में भारतीय-संस्कृति के वे सच्चे प्रतिनिधि थे, जनता-जनार्दन के प्रतिरूप थे।

•

स्वातन्त्र्य वीर सावरकर

जगदीशप्रसाद माथुर

सन् १८८३ की २८ मई को नासिक के समीप भगूर नामक ग्राम में श्री विनायक दामोदर सावरकरजी का जन्म हुआ था। और पूना में २६ फरवरी १९६६ को उनका स्वर्गवास हुआ। ८३ वर्षों की उनकी महान् क्रांतिकारी, संघर्ष-शील, निर्भीक, देशभक्ति पूर्ण और स्वाभिमानी जीवन झांकी हम भारतीयों के समक्ष उपस्थित है। गुलामी के कालखंड में उन्होंने अंग्रेजों से संघर्ष किया और देश की आजादी के समय में उपेक्षित रहकर भी राष्ट्र-कल्याण के लिए वे कसमसाते रहे और उन्होंने अपने व्यक्तिगत सुख की कभी कोई कामना नहीं की।

जीवन का लक्ष्य उन्हें अपनी आयु की किशोरावस्था में ही मिल चुका था। उस समय वे १५ वर्ष की आयु के थे। इसी छोटी-सी आयु में उन्होंने एक दिन प्रतिज्ञा कर ली कि वे अपने देश को पराधीनता से मुक्ति दिलायेंगे। "रणावीण स्वातन्त्र्य कोणा मिणाले" पंक्ति उनकी मार्गदर्शक थी। इसलिए तरुणों का संगठन 'मित्र मेला' उन्होंने नासिक में प्रारम्भ किया। सन् १९०१ में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। बंगभंग आंदोलन के समय उन्होने भी पूना में विदेशी कपड़ों की होली जलाई। इसी बीच उनका सम्पर्क लोकमान्य तिलक जी के साथ हुआ। और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने साहसिक निर्णय लिया। बैरिस्टरी का अध्ययन करने के लिए इंग्लैंड जाने का। अंग्रेजों की मांद में जाकर ही एक सफल क्रांतिकारी के नाते उन्होंने विस्फोट करने का यह निर्णय लिया था। प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने उनकी पीठ थपथपाई और थोड़े समय में ही इन्होंने इंग्लैंड स्थित भारतीय तरुणों को संगठित कर 'अभिनव भारत' नामक क्रांतिकारी संस्था की स्थापना की, जिसका विसर्जन उन्होंने देश के स्वतन्त्र होने के बाद सन् १९५३ में किया।

[illegible] ।में झेलते रहे, इसलिये स्वाभाविक ही था कि उनकी

वाणी और लेखनी भी आग उगलती थी। १० मई १९०७ को १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध की अर्द्ध शताब्दी के अवसर पर उन्होंने एक ऐसा ग्रन्थ लिखा जिससे सम्पूर्ण अंग्रेज सत्ता हिल उठी और उस ग्रन्थ के छपने के पूर्व ही उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। वह ग्रन्थ था "सन् सत्तावन का स्वातन्त्र्य समर"। यह ग्रन्थ ५०० पृष्ठों में मराठी भाषा में लिखा गया था। इसकी मूल प्रतिलिपि अंग्रेजों के हाथों में पड़ गई, किन्तु इसका अंग्रेजी में अनुवाद सुरक्षित था। श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने इसे हालैंड से प्रकाशित किया। स्वयं उस एक ग्रन्थ का ही इतिहास इतना महान है कि श्री० सावरकरजी के जीवन की तेजस्विता को आंकने के लिए अन्य दूसरा उदाहरण लेने की आवश्यकता नहीं रहती। इस ग्रन्थ पर ४० वर्ष तक निरंतर रोक लगी रही। किन्तु इसकी आवृत्तियाँ गुप्त रीति से छपती और बँटती रहीं। श्री श्याम कृष्ण वर्मा के बाद लाला हरदयाल जी ने इसे छपवाया. तीसरी बार सरदार भगतसिंह ने इसे छापकर बँटवाया और चौथी बार नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने इसे आजाद हिन्द के सैनिकों में बँटवाया। भारत की सभी भाषाओं मे इसके अनुवाद प्रकाशित हुए देश की आजादी के लिए प्रेरणा देने वाली यह पुस्तक क्रान्ति का वेद माना जाता रहा।

इंग्लेंड के खिलाफ इग्लेंड से ही पिस्तौल व कारतूस भेजने का साहसी कार्य श्री सावरकर जी की सूझ-बूझ थी। इतना ही नहीं १ जुलाई १९०९ को लन्दन नगर में सरेआम श्री मदनलाल ढींगरा द्वारा कर्नल वायली को निशाना बनाया गया। सारा इग्लेंड कांप उठा। २१ दिसम्बर १९०९ को पूना मे अत्याचारी जैक्सन को गोली से उड़ा दिया गया। फलतः १० मई १९१० को सावरकर जी पर कई गम्भीर आरोप लगाकर अंग्रेज सरकार ने इंग्लेंड में पकड़ लिया। मोरिया नामक जहाज में उन्हें बन्दी बनाकर लाया जा रहा था जब यह जहाज फ्रांस के मार्सलीज नामक बन्दरगाह के निकट पहुँचा तो श्री सावरकर जी ने असाधारण बुद्धिमानी से काम लिया। वे

पाखाने के द्वार से उस अनन्त सागर की छाती पर कूद पड़े। ऊपर से उनपर गोलियां बरसाई जाती रहीं, किन्तु वे साहस के साथ ५ मील तक समुद्र में तैर कर किनारे आ लगे। फ्रांस की पुलिस ने लोभवश उन्हें पुनः अंग्रेजों के अधीन कर दिया। १९११ में जब अंग्रेज सरकार ने उन्हें एक साथ दो जीवनावधियों (५० वर्ष) का कारावास दंड सुनाया, तो उन्होंने हँसते हुए कहा, "मुझे बहुत-प्रसन्नता है कि ईसाई (ब्रिटिश) सरकारने मुझे दो जीवनों का कारावास दंड देकर पुनर्जन्म के हिन्दू सिद्धान्त को मान लिया।" अदमान की कालकोठरियों में जहां कोल्हू चलाना पड़ता था और नाना प्रकार की यातनाएं सहनी पड़ती थीं वे १४ वर्ष तक कष्ट झेलते रहे, किन्तु उनके उत्साह में कमी नहीं आई। यहां उन्होंने ग्रन्थ-लेखन का कार्य किया। अंदमान की कालकोठरियों से बाहर आने के बाद भी उन्हें रत्नागिरी में स्थानबद्ध कर दिया गया। सन् १९११ से सन् १९३७ तक उनके जीवन की भीषण संघर्ष की कहानी है, जो दुनिया के किसी भी भयंकर से भयंकर उपन्यास के रोमहर्षक प्रसंगों से टक्कर ले लेती है। १९३७ के बाद हिन्दू महासभा के नाते वे आगे आये और उन्होंने कांग्रेस की मुस्लिम-तुष्टीकरण की नीति का विरोध किया। किन्तु उनका विश्वास था कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति शस्त्र और संगठन के बल पर ही हो सकती है। बताया जाता है कि वे १९४० में गुप्त रीति से नेताजी सुभाषचन्द्र बोस से मिले और आजाद हिन्द फौज का इतिहास निर्मित हुआ।

वे ओजस्वी वक्ता, कवि और लेखक तो थे ही, समाज-सुधारक, क्रान्तिकारी योद्धा, नेता भी थे। उन्होंने अपनी अन्तिम इच्छाओं में जो कुछ व्यक्त किया है, वह इस बात का सूचक है कि वे किस सीमा तक समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहते थे और अपनी मृत्यु पर भी वे उसके लिए कुछ न कुछ निश्चित बताना चाहते हैं।

शहीद-शिरोमणि अब्दुल हमीद

वीरेन्द्रमोहन रतूड़ी

आज धामूपुर (जिला गाजीपुर) का नाम हमीदधाम रख दिया गया है। मगई नदी के उत्तर तट पर बसा हुआ यह वह गाँव है जिसने एक ऐसे वीर को जन्म दिया, जिसने राष्ट्र के सम्मान, राष्ट्र की धर्म-निरपेक्षता, राष्ट्र की अखण्डता और राष्ट्र के बल को अपने खून से सींचा है। धामूपुर आज हमारा तीर्थ है।

घर में पुश्तैनी पेशा दरजी का है। बाप मुहम्मद उस्मान अपने बेटे को भी इसी काम में लगाना चाहता है। बेटा बीस वर्ष का जवान हो गया है। मसें भीग रही हैं।

वह बनारस भाग जाता है और सेना में भरती हो जाता है।

बाप उसे ढूँढता हुआ बनारस पहुँचता है और जबरदस्ती घर वापस ले आता है।

कुछ दिन बाद शरीर का खून फिर उबाल मारता है और वह फिर भाग जाता है। २७ दिसम्बर, १९५४ को वह सेना में भरती कर लिया जाता है।

उसे फौजी ट्रेनिंग दी जाती है और नसीराबाद (राजस्थान) ग्रेनेडियर्स रेजिमेण्टल ट्रेनिंग सेण्टर भेज दिया जाता है। १३ फरवरी १९५६ तक वहाँ रहता है और फिर जम्मू-कश्मीर की सीमा की चौकसी के लिए भेज दिया जाता है।

वहाँ वह निडर बहादुर की तरह सीमा की चौकसी करता है और इसके लिए जम्मू-कश्मीर की पट्टी वाला 'सैन्य सेवा मेडल' प्राप्त करता है।

यह पहला पुरस्कार है, जो उसे मिला। साथ ही वह लांसनायक भी बना दिया जाता है।

फिर मार्च १९६२ में वह नायक भी बन जाता है।

× × ×

अक्तूबर १९६२। नेफा और लद्दाख पर चीन का भीषण आक्रमण।

नायक अब्दुल हमीद नेफा के थागला रिज की एक चौकी पर नियुक्त है। दुश्मन भारी संख्या में आकर रिज पर हमला करता है।

अब्दुल हमीद बहादुरी के साथ दुश्मन का मुकाबला करता है। लेकिन दुश्मन सैकड़ों की संख्या में है। अब्दुल हमीद उन्हें रोककर अपने साथियों को बच निकलने का मौका देता है। सब साथी बच निकलते हैं।

अब्दुल हमीद अकेला रह जाता है। दुश्मन ने चारों ओर से चौकी घेर ली है। अब्दुल हमीद काफी देर तक मुकाबला करता है और अन्त में अपनी चौकी में रखे गोला-बारूद को आग लगा देता जिससे वह दुश्मन के हाथ न पड़े।

आग भड़कती है और इसी बीच वह दुश्मन की आँखों में धूल झोंककर चौकी से बच निकलता है।

आगे बीहड़ और भयानक पहाड़ियाँ। सभी रास्ते दुश्मन ने घेर रखे हैं। हमीद बीहड़ पहाड़ियों से होकर गुजरता है।

भूखा-प्यासा, थका हुआ, केवल घास-पात से पेट भरता हुआ वह चलता जाता है, चलता जाता है। पन्द्रह दिन चलते-चलते वह भूटान पहुँचता है। वहाँ उसे भरपेट खाना मिलता है।

भूटान से उसे तेजपुर भेजा जाता है। साथी उसे देखते हैं तो आश्चर्यचकित रह जाते हैं। उसे बाँहों में भर लेते हैं और खुशी से आँसू की धाराएँ बह निकलती हैं।

फिर वह आराम करने के लिए राँची भेज दिया जाता है।

अब वह हवलदार है।

× × ×

मार्च-अप्रैल १९६५। कच्छ के रन में भारत और पाकिस्तान का संघर्ष।

हवलदार अब्दुल हमीद फिर अपनी कम्पनी के साथ कच्छ के रन में पहुँच गया है। बहादुर कहीं भी जाए, अपना शौर्य अवश्य दिखाता है।

कच्छ के रन में वह जान हथेली पर रखकर दुश्मन का मुकाबला करता है। पुरस्कारस्वरूप उसे कम्पनी क्वार्टर-मास्टर हवलदार बना दिया जाता है।

× × ×

१० सितम्बर, १९६५ को सुबह। खेमकरण क्षेत्र में भिकिविड-खेमकरण सड़क पर चीमा गाँव।

दुश्मन पैटन टैंकों की एक रेजिमेण्ट लेकर बढ़ता आ रहा है।

९ बजे तक वह काफी अन्दर आ गया है। तोपों और टैंकों से अन्धा-धुंध गोले छूट रहे हैं।

कम्पनी क्वार्टर-मास्टर अब्दुल हमीद अपनी टुकड़ी के साथ एक जीप में है। जीप पर रिकायललेस गन लगी है। वह अपनी टुकड़ी को आदेश ही नहीं देना चाहता, बल्कि खुद भी कुछ कर दिखाना चाहता है।

दुश्मन के टैंक अभी १,६०० गज दूर हैं। अब्दुल हमीद यहीं से उन पर गोले बरसा सकता है। लेकिन वह गोले बरबाद नहीं करना चाहता। वह अचूक निशानेबाज है और एक-एक गोले से एक-एक टैंक तोड़ना चाहता है।

टैंक और निकट आ गए हैं। निरन्तर गोले आ रहे हैं। अब्दुल हमीद बगली मोर्चा लेने आगे बढ़ता है, सबसे आगे।

उसे दुश्मन का एक टैंक दिखाई देता है। वह अपनी गन का मुँह उसकी ओर करता है और गोला दाग देता है—धाँय! टैंक वहीं रुक जाता है। उसमें आग की लपटें निकलने लगती हैं।

दूसरा टैंक आ रहा है। अब्दुल हमीद तुरन्त अपना स्थान बदलता है और उसकी ओर भी एक गोला दाग देता है—धाँय! वह टैंक भी जल उठता है।

तभी तीन-चार टैंक एक साथ आ जाते हैं। अब्दुल हमीद की जीप काफी निकट खड़ी है। टैंकों ने अपनी तोपों का मुँह उसकी ओर कर दिया है।

और इससे पहले कि वे टैंक गोले छोड़ें, अब्दुल हमीद फिर एक और गोला दाग देता है। तीसरा टैंक भी वहीं धराशायी हो जाता है।

लेकिन अब तक अनेक मशीनगनों और टैंकों की तोपों का मुँह उसकी ओर हो जाता है। एक गोला उसकी जीप पर पड़ता है। अब्दुल हमीद उससे बच नहीं पाता। वह गिरने लगता है।

उसके साथी अब मोर्चा जमा चुके हैं और दुश्मन पर धड़ाधड़ मार कर रहे हैं।

वह गिरते-गिराते भी अपने साथियों को आदेश देता है—"आगे बढ़ो!"

अब्दुल हमीद गिर पड़ता है। लेकिन उसके साथी उसके आदेश का पालन करते रहते हैं और तब तक नहीं रुकते, जब तक दुश्मन भाग नहीं जाता।

अब्दुल हमीद"'धामूपुर का'"नहीं, पूरे भारतवर्ष का अब्दुल हमीद अमर हो गया है।

नं० २६३९९४५ कम्पनी क्वार्टर-मास्टर हवलदार अब्दुल हमीद अब इस दुनिया में नहीं है; लेकिन उस 'परमवीर' अब्दुल हमीद ने राष्ट्रप्रेम और धर्म-निरपेक्षता का जो उदाहरण हमारे सामने रखा है, वह आगे आने वाली पीढ़ियों को प्रेरणा देता रहेगा!

•

एयर चीफ मार्शल अर्जनसिं

सत्यदेवनारायण सिन्

१५ अगस्त, १९४७ को कई सौ वर्षों की गुलामी के बाद हमा
देश भारत आजाद हुआ था। देश के कोने-कोने में खुशियां मना
जा रही थी। दिल्ली का ऐतिहासिक लालकिला दूल्हे की तरह स
था। १६ अगस्त को प्रातः लालकिले पर हमारे देश के पहले प्रधा
मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू को राष्ट्रीय झंडा फहराना था। योज
थी कि ज्यों ही किले पर तिरंगा फहरे, त्यों ही स्वतन्त्र भारत
वायुसेना के हवाई जहाज कलाबाजी दिखाते हुए झंडे को सलामी
परन्तु यह काम आसान न था। संतुलन बिगड़ने पर जहाजो
आपस में टकराने का भय था। ऐसे समय वायु सेना के (तब) अ
भवी विंग-कमांडर अर्जनसिंह ने यह जिम्मेदारी अपने सिर पर ल
१६ अगस्त ४७ को लाखों लोगों ने देखा कि इधर पं० जवाहरल
नेहरू ने लालकिले पर तिरंगा फहराया और उधर चांदनी चौक
सारा आकाश वायुयानों से भर उठा। झंडे को सलामी देने वायु
आये और गुजर गये। यह सब मिनटों में ही समाप्त हो गया। स्व
भारत के आकाश में अपनी वायुसेना का कमाल देख कर उपस्थि
लोग दंग रह गये।

इस कठिन काम को कुशलतापूर्वक निभाने वाले अर्जनसिंह
आजकल हमारी वायुसेना के अध्यक्ष हैं। तब से अब तक भ
के प्रत्येक गणतन्त्र दिवस पर यह काम एयर मार्शल अर्जनसिंह
देखभाल में होता आ रहा है।

हमारे वायुसेनाध्यक्ष एयर मार्शल अर्जनसिंह विभिन्न किस्म
साठ से अधिक हवाई जहाज चलाना जानते हैं। सन् १९६२ में
ने जब हमारे देश की उत्तरी सीमा पर हमला कर दिया था,

सीमा पर तैनात हमारे जवानों को लगातार हथियार, गोलाबारू और रसद भेजना जरूरी हो गया, परन्तु उधर पहाड़ बर्फ से ढक था। चारों तरफ कोहरा छाया रहता था। कुछ ही गज आगे क्या है यह दिखाई नहीं देता था। ऐसी दशा में पहाड़ों की चोटियों हवाई जहाजों के टकरा जाने का भय था, परन्तु एयर मार्शल अर्जनसिंह को अपने हवाबाजों का हौसला बुलंद रखना था। वे स्वय हवाई जहाज लेकर उड़े। सीमा-क्षेत्रों में उड़ान भर कर अपने थल सैनिकों की हालत देखी और फिर सकुशल वापस आ गये।

फिर तो अर्जनसिंह का प्रोत्साहन पाकर हमारे बहादुर हवा-बाजों ने दस हजार से सोलह हजार फीट ऊँचे स्थानों पर डकोटा जैसे परिवहन-विमान उड़ाये।

अब पाकिस्तान की ही बात लो। उसके नेताओं ने भारत से वर्षों तक लड़ने की बात कही। उन्होंने एक दिन एकाएक पचासों पैटन टैंकों और कई हजार पाकिस्तानी सैनिकों के साथ हमारे देश पर हमला कर दिया। हमारी थलसेना उस अचानक हमले के लिए तैयार न थी। पाकिस्तान की उस राक्षसी फौज से हमारी सेना को अब केवल वायुसेना ही बचा सकती थी।

इसी बीच हमारी वायुसेना के हवाबाजों को एयर मार्शल अर्जन-सिंह का आदेश मिला। 'दुश्मन पर जोरदार हमला करो।' तुरन्त हवाई जहाजों में बैठ कर हमारे वायुसैनिक उड़े। बात-की-बात में वे दुश्मन के सिर पर जा पहुँचे। बमों की मार से सिर्फ आध घंटे में ही दुश्मन के दर्जनों टैंकों का जनाजा निकाल दिया। अगर इस समय हमारी वायुसेना सतर्क न रहती, तो हमारा बहुत ज्यादा नुक-सान होता। एयर मार्शल अर्जनसिंह की देखरेख में उन दिनों हमारी वायुसेना के तीन प्रमुख कार्य थे—(१) अपनी थलसेना का बचाव और उन्हें ठीक समय पर हथियार तथा रसद पहुँचाना। (२) पाकि-स्तानी सेना के रसद, हथियारों के भंडार और टैंकों को बरबाद

करना और (३) पाकिस्तानी सीमा में घुसकर उनके हवाई अड्
पर बम बरसाना। इन तीनों कामों की जिम्मेदारी को एयर मार्श
अर्जनसिंह ने जिस कुशलता से निबाहा, उसके लिए प्रत्येक भार
वासी उनका ऋणी रहेगा।

अर्जनसिंह लगभग २८-२६ वर्ष पूर्व भारतीय वायुसेना में भ
हुए थे। उसके पांच वर्ष बाद सन् १६४४ में उन्हें सर्वप्रथम 'नि
और सक्षम वायुयान चालक' के सम्मान में 'फ्लाइंग क्रास' प्रद
किया गया। आजादी के बाद ग्रुप-कैप्टन के रूप में उन्होंने अम्बा
स्थित वायुसेना की कमान सम्भाली। कुछ ही वर्ष पूर्व वे वायु सेना
डिप्टी-चीफ थे। १ अगस्त, १६६४ से अर्जनसिंह भारतीय वायुसे
के अध्यक्ष हैं।

एयर चीफ मार्शल अर्जनसिंह का जन्म १५ अप्रैल, १६१६
लायलपुर (अब पाकिस्तान में) हुआ था। शिक्षा उन्होंने पश्चि
पाकिस्तान में मिंटगुमरी, गवर्नमेंट कालेज लाहौर तथा आइ
ट्रेनिंग कार्नवाल (ब्रिटेन) में प्राप्त की। अपने विद्यार्थी जीवन
बहुत ही अच्छे खिलाड़ी रहे हैं। अपनी योग्यता और प्रतिभा के
पर वे उन्नति करते हुए आज 'एयर चीफ मार्शल' जैसे महत्त्व
पद पर पहुँचे हैं। हमें अपने एयर चीफ मार्शल अर्जनसिंह पर
है। भला ऐसे शूरवीर के रहते भारत का कोई बाल भी बांका
पायेगा!

आज्ञाकारिता

सहनशीलता

दयालुता

सामाजिक मान्यताओं की स्वीकृति

बालक के लिए सामान्यतः दो कार्यक्षेत्र रहते हैं—१. घर व विद्यालय। घर में माता-पिता या ज्येष्ठ भाई-बहिन तथा विद्यालय में अध्यापकगण उसके लिए ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं। अतः वे पूज्य हैं। उनकी आज्ञा का पालन करना प्रत्येक विद्यार्थी का कर्त्तव्य है।

आज्ञापालन से विद्यार्थी में आज्ञा देने वाले के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा के कारण वह माता-पिता एवं गुरुजनों का आदर करता है; उनके प्रति मन में विश्वास का भाव जाग्रत होता है।

आज्ञापालन में कठिनाई भी होती है, कष्ट भी सहने पड़ते हैं। अनेक बार गुरु या माता-पिता की आज्ञा पूर्ति में जीवन तक उत्सर्ग करना पड़ता है। पिता की आज्ञा मानकर पुरुषोत्तम श्री राम ने १४ वर्ष वन के कष्ट सहे। गुरुजी की आज्ञा मानकर एकलव्य ने दाएँ हाथ का अंगूठा काटकर गुरु-दक्षिणा में अर्पित कर दिया और महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपना जीवन समाज के अर्पण कर दिया।

स्वतन्त्रता से पूर्व विद्यार्थी आज्ञापालन को जीवन का आदर्श समझता था। घर या कुटुम्ब में, गली या नगर में, स्कूल या कॉलिज में अपने से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ का सम्मान करना, श्रद्धा से उनका अभिवादन करना उसका स्वभाव था। इस स्वभाव के कारण उसका चरित्र उज्ज्वल और महान् होता था। आज विद्यार्थी-वर्ग में इसका अभाव दिखाई देता है। वह माता-पिता और गुरुजनों के आदेश को तर्क की कसौटी पर कसता है। उसकी आलोचना करना वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। फलतः उसमें श्रद्धा का अभाव रह जाता है। श्रद्धा के बिना विश्वास कैसा? विश्वास के अभाव में 'कुछ सीख पाने' की जिज्ञासा कैसी? इस प्रकार समूचा जीवन एक विडम्बना बनकर रह जाता है। यह अच्छी बात नहीं है।

हमें अपने जीवन में आज्ञा-पालन को अपना स्वभाव बना लेना चाहिए।

सहनशीलता

अपने तन अथवा मन पर किए आघातों का प्रत्युत्तर न देकर भगवान शंकर की भांति विष को पी जाने वाली प्रवृत्ति को सहनशीलता कहते हैं। क्रोध पर विजय पाना सहनशीलता का लक्षण है।

सहनशीलता से हमें एक आत्मिक शान्ति प्राप्त होती है। आत्मिक शान्ति से आत्मबल बढ़ता है; चरित्र में दृढ़ता आती है, मानव महान् बनता है।

मन में बदला लेने की भावना हो, अन्दर ही अन्दर क्रोध से जले जा रहे हों, किन्तु प्रतिद्वन्द्वी के अधिक शक्तिशाली होने के कारण उसके द्वारा किए जाने वाले मानसिक या शारीरिक व्याघातों का प्रतिकार न किया जाए तो वह सहनशीलता न कहलाएगी।

सहनशीलता का गुण साधना से आता है। साधना मन को वश में करने पर होती है। मन को एकाग्र करने पर सम्मुख आई विपत्ति को आत्मशक्ति से सहा जाता है, शरीर बल से नहीं।

महापुरुषों में सहनशीलता का गुण अवश्य होता है। वे अपमान करने वाले, अपने प्रति दुर्वचन कहने वाले को क्षमा कर देते हैं। अपराधी को दण्ड दे सकने की सामर्थ्य होते हुए भी उसे क्षमा कर देना ही सच्ची सहनशीलता है।

❀

दयालुता

पीड़ित एवं कष्ट भोगी व्यक्ति पर दया का भाव प्रकट करना दयालुता कहलाती है।

जिस प्रकार वसन्त फूलों को पृथ्वी पर बिखेरता है और मेघ खेतों को शस्य सम्पन्न करते हैं। उसी प्रकार दया का भाव दुर्भाग्य पीड़ित प्राणियों पर कल्याण की वर्षा करता है।

श्रीमद्भागवत् में कहा है, 'अपने से बड़ों के प्रति दया, बराबर वालों के साथ मित्रता और समस्त जीवों के प्रति समभाव रखने से सर्वात्मा श्री हरि प्रसन्न होते हैं।'

जो भेद-दृष्टि रखने वाले, अभिमानी पुरुष जीवों को पीड़ा पहुँचाते और लोगों से वैर-भाव रखते हैं, उन्हें मन की शान्ति नहीं मिलती। जिस प्रकार भेड़ों की चिल्लाहट से कसाई का हृदय नहीं पसीजता, उसी प्रकार दूसरों के दुःख से निर्दयी भी नहीं पिघलता।

दया भी समर्थ मनुष्य ही कर सकता है। 'दीनों का परिपालन' समर्थ मनुष्य की शक्ति का प्रयोजन होना चाहिए।

दया के आँसू गुलाब के हिम-कणों से भी अधिक मोहक होते हैं। अतः दीनों के आर्तनाद को सुनकर कान न बन्द करो और न निर्मल अन्तःकरण वालों को आपत्ति में देखकर कठोर हृदय बन जाओ।

सामाजिक मान्यताओं की स्वीकृति

समाज एक व्यापक शब्द है। इसकी मान्यताए भी व्यापक हैं। भारत में धर्म के आधार पर विभिन्न समाज हैं। उनके विश्वास और स्वीकृतियां हैं। फिर वर्तमान राजनीति समाज की मान्यताओं में भी हस्तक्षेप करती है।

हर समाज की कुछ अपनी मान्यताएँ हैं। उन मान्यताओं की स्वीकृति समाज को उन्नत करती है। मान्यताओं का तिरस्कार समाज को अधःपतन की ओर ले जाता है।

समाज एक जीवित वस्तु है। मानव जीवन-सृष्टि का सबसे बड़ा विकसित रूप है। सभी धर्म मनुष्य को भगवान् का स्वरूप मानते हैं। उसकी शरीर रक्षा जीवन के विकास का सर्वोत्तम रूप है। किसी जीवमान स्वरूप की रचना, उसके अनुरूप होनी चाहिए। अन्यथा वह नष्ट हो जाएगा। इसी प्रकार समाज रचना भी जीवमान मानव के अनुरूप ही हो, तो वह भी निसर्ग के अनुकूल होने के कारण अधिक उपयुक्त होगी।

हिन्दू-समाज में सगोत्र विवाह निषिद्ध है। जनेऊ तथा चोटी रखना सामाजिक धर्म है। गऊ को माता मानते हैं। माता-पिता, गुरुजनों तथा अतिथि को देवतुल्य मानते हैं। दया और धर्म हमारी प्रेरणा हैं। अध्यात्मभाव हमारे प्राण हैं। ये सामाजिक मान्यताएँ हिन्दू-समाज के सभी धर्मावलम्बी (वैदिक धर्म, सनातन धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, लिंगायत धर्म, सिख धर्म, आर्य समाज, ब्रह्म समाज, देव समाज, प्रार्थना समाज तथा इन्हीं के समान भारत में उद्गमित अन्य धर्म) स्वीकार करते हैं।

इनका पालन ही जीवन की महानता का चिह्न है।

आज्ञाकारी बालक

मम्मुदयाल सक्सेना

तोप के गोले से जहाज में आग लग गई। लपटें चारों ओर से उठकर जहाज के मस्तूल को घेरने लगीं। वहीं पर एक बारह-तेरह बरस का बालक खड़ा था। उसका मुंह गुलाब की तरह था। पिता ने उसे आज्ञा दी थी कि बेटा यहीं पर खड़े रहना। बालक वहीं खड़ा था और प्रतीक्षा कर रहा था कि उसके पिता आकर कहें तो वह वहाँ से हटे।

दुर्भाग्य से पिता गोले का शिकार हो गया था और वह जहाज की तली में कहीं बेहोश पड़ा था। जब पिता न आया और आग की लपटें भयंकर रूप से बढ़ने लगीं तो बालक चिल्लाया—पिताजी, पिताजी बताइये, मैं अब क्या करूँ? क्या यहीं खड़ा रहूँ या हट जाऊँ?

उसकी पुकार तोपों की गड़गड़ाहट और लहरों की गर्जन में मिल गई। उत्तर कोई न मिला। जहाज पर के दूसरे लोगों ने नौकाएं समुद्र में डाल दीं और उन पर उतर गये। उन्होंने बालक से कहा—छोड़ दो जहाज। आ जाओ नाव पर, परन्तु बालक ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। वह उसी तरह अचल खड़ा रहा।

जब लपटों ने निर्दयता से उसे लपेट लिया और उसके घुंघराले बाल जलने लगे तो एक बार फिर चिल्लाया—पिताजी, मैं यहीं हूँ। आग की लपटें मेरे चारों ओर बढ़ आई हैं? आप बताइये मेरा काम अभी पूरा हुआ या नहीं? मैं यहां से जाऊँ या अभी थोड़ी देर और खड़ा रहूँ?

उत्तर कोई नही मिला। बालक लपटों में सिर से पैर तक ढक गया। उसी समय एक धड़ाका हुआ और जहाज के टुकड़े-टुकड़े बिखर गये। कहाँ गया वह मस्तूल? कहाँ गया आसमान में फहराने वाला झण्डा, परन्तु वह आज्ञाकारी बालक मरकर भी सदा के लिए अमर हो गया।

सामाजिक मान्यताएं और आज्ञाकारी शंकराचार्य

पं० दीनदयाल उपाध्याय

माता आर्यम्बा अन्तिम सांसे गिन रही है, ऐसा जानकर शंकराचार्य शीघ्रातिशीघ्र कालटी पहुँचे। भगवान् की कृपा से माता के अन्तिम दर्शन कर सके। जैसे ही वे घर में गये कि दौड़ कर उन्होंने अपनी माता के चरण पकड़ लिये। भूल गये कि वे संन्यासी हैं, सर्व-वन्द्य हैं। नहीं, भूले नहीं थे। वे जानते थे कि कितने भी बड़े क्यों न हो जायें, माता के लिये तो वे वही शंकर हैं और फिर माता माता ही है; सर्वदा आदरणीया है, पूज्या है। माता आर्यम्बा ने उनको गले से लगा लिया। हर्षातिरेक से उसके आँसू निकलने लगे।

शंकराचार्य ने माता की खूब सेवा-शुश्रूषा की। सदा माता की खाट के पास ही बैठे रहते; उसे दवा देते, पथ्य देते, गर्मी में पंखा झलते।

एक दिन आर्यम्बा ने शंकराचार्य से कहा, "शंकर! तू धर्म का ज्ञाता है। देश भर में धर्म-प्रचार करने वाला है। तनिक मुझे भी तो कुछ धर्म बता। मरते-मरते तो कुछ शान्ति मिले।"

शंकराचार्य ने माता की आज्ञा पाकर उसे अद्वैत की बातें अत्यन्त ही सीधी और सरल भाषा में बताने का प्रयत्न किया। उसे समझाने के लिये उन्होंने तत्त्वबोध नाम का एक सरल ग्रन्थ भी रचा। सब कुछ सुनकर माता आर्यम्बा ने कहा, "ये तो ऊँची बातें हैं शंकर! देश के सब लोग इन बातों को कहाँ समझ सकेंगे? मुझे तो कुछ भगवान् कृष्ण के विषय में ही बता।"

शंकराचार्य ने कृष्णाष्टक बनाकर माता को सुनाया तथा उसी दिन यह भी समझा कि जब तक वेदान्त के तत्त्वज्ञान को भक्ति का पुट नहीं मिलता तब तक वह जन-साधारण के किसी भी काम का नहीं है। और इसी समय भक्तों के भिन्न इष्टदेवों के पीछे एक परब्रह्म

की प्रतिष्ठापना का निश्चय कर लिया। कृष्णाष्टक सुनकर आर्यम्बा इतनी भक्तिभाव पूर्ण हो गई कि भगवान् का ध्यान करते-करते ही उसकी आत्मा भगवान् में लीन हो गई। कृष्णाष्टक समाप्त करते ही शंकराचार्य ने देखा कि उनके सामने माता का प्राण-हीन शरीर पड़ा हुआ है।

माता की मृत्यु के उपरान्त उसका अन्तिम संस्कार करना उनका कर्त्तव्य हो जाता था, क्योंकि वे इसकी प्रतिज्ञा कर चुके थे। वे संन्यासी थे और संन्यासी को दाहकर्म करने की आज्ञा नहीं है, यह वे जानते थे। यह समस्या उनके समक्ष भी उपस्थित हुई थी जब माता आर्यम्बा ने उनसे उसका अन्त्य संस्कार कराने की प्रतिज्ञा करवा ली थी। वह सोचती थी कि अन्तिम संस्कार की प्रतिज्ञा और संन्यास दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। इसलिये शंकर संन्यास का विचार छोड़ देगा, परन्तु शंकराचार्य ने संन्यास-धर्म इसलिये अपनाया था कि इस मार्ग से देश, जाति और धर्म का अधिक से अधिक कार्य कर सकेंगे, न कि इसलिये कि उन्होंने संन्यास को ही सर्वस्व समझ रखा था।

शंकर के इस कार्य के कारण उनके कुल के तथा कुटुम्ब के लोग उनसे बिगड़ गये तथा किसी ने भी आर्यम्बा का शव उठाने तक में सहायता नहीं दी। परन्तु दृढ़निश्चयी, दृढ़प्रतिज्ञ, निर्भीक एवं अपने अंतःकरण में प्रतिष्ठापित सत्य के समक्ष संसार की चिन्ता न करने वाले शंकराचार्य ने स्वयं एकाकी ही सम्पूर्ण संस्कार विधिवत् किये। अपने घर के आँगन में ही चिता रच कर अपनी बलिष्ठ भुजाओं से उठा कर शव को चिता पर रखा और वेद-मन्त्रों का उच्चारण करते हुए अग्नि-संस्कार किया। माता का अन्तिम संस्कार पुत्र द्वारा ही होना चाहिए, इस सामाजिक मान्यता को संन्यासी होते हुए भी निभाया। यह शंकराचार्य की महानता थी।

बिच्छू ने पैर में काटा है, सिर में नहीं

शशिप्रभा गुप्ता

परीक्षा के दिन समीप थे। रुग्णता के कारण माधव पूर्ण तय्यारी नहीं कर पाए थे। अतः रात-दिन पढ़ाई में जुट गए।

एक दिन एकाग्रचित हो माधव अध्ययन कर रहे थे। विषय भी गम्भीर था। अकस्मात् पैर में बिच्छू ने काट खाया। बिच्छू के काटने से वेदना हुई। अध्ययन में विघ्न पड़ा। पढ़ाई में बाधा माधव को असह्य हो गई।

वे तुरन्त उठे। ब्लेड से बिच्छू के काटे स्थान को छीलकर उसमें दवा भर दी। एक बाल्टी ली। उसमें पानी भरकर कुर्सी के समीप रख लिया। दवा भरा पैर पानी भरी बाल्टी में रखकर वे शान्तचित्त एवं एकाग्रतापूर्वक पुनः अध्ययन करने लगे। सहनशीलता और साहस का अद्भुत दृश्य था।

एक सहपाठी, जो कि इस दृश्य को देख रहा था, माधव की इस दशा से तिलमिला उठा। उसने माधव से कहा—"तुम्हें बिच्छू ने काट लिया, फिर भी क्यों पढ़ते जा रहे हो ?"

माधव ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया, 'बिच्छू ने पैर में काटा है, सिर को तो नहीं।'

यही विद्यार्थी माधव राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक परमपूजनीय गुरुजी हैं।

सहनशीलता और संततुकाराम

ब्रजभूषण

संत तुकाराम अपनी सरल-प्रकृति के लिए प्रसिद्ध थे। उनसे कोई भी व्यक्ति उनकी कोई वस्तु मांगता तो वे तुरन्त ही दे दिया करते थे। एक बार उनके एक प्रशंसक ने उन्हें ढेर सारे गन्ने दिये। गन्ने लेकर वे घर की ओर चले। रास्ते में बालकों की एक टोली उन्हें मली। वे बोले "सन्त जी, हमें भी एक गन्ना दो।"

सन्त तुकाराम ने कुछ गन्ने उन्हें बांट दिये और आगे बढ़े। आगे चलकर खेलती-कूदती बालकों की एक टोली उन्हें मिली। वे भी शोर मचाने लगे, "सन्त जी, हमें गन्ना दो।"

सन्त तुकाराम ने उन्हें भी गन्ने देकर खुश किया और आगे बढ़े सन्त जी के पीछे-पीछे एक गाड़ीवान अपनी गाड़ी पर आ रहा था। यह सन्त जी का पड़ोसी था। उसने गन्ने बांटते हुये देखा तो बोला, "सन्त जी मुझे भी गन्ना दो।"

"तू भी ले भाई" कहकर संत तुकाराम ने उसे भी गन्ना दिया।

"आपने तो सभी गन्ने बाँट दिये सन्त जी! अब घर क्या ले जायेंगे?"

"घर ले जाने के लिए दो-चार गन्ने तो हैं?"

"पर आप तो ढेर सारे गन्ने लेकर चले थे।" गाड़ीवान ने फिर कहा।

"हां, किन्तु मार्ग में जिसके हिस्से का गन्ना था, उसे देता गया।'

"हिस्सा तो सारा आपका ही था, सन्त जी।"

"नहीं, मेरा हिस्सा मेरे पास रहेगा, जो मेरे पास नहीं, वह हिस्सा मेरा नहीं।"

सन्त जी की सरल बात सुनकर गाड़ीवान ने गाड़ी आगे बढ़ाई। तुकाराम फिर गन्ने बांटने खड़े हो गये। मार्ग में गन्ने की सारी बात

गाड़ीवान ने तुकाराम की पत्नी को घर पहुँचकर कह सुनाई।

गाड़ीवान की बात सुनकर तुकाराम की पत्नी को बहुत ही क्रोध आया। वह क्रोध से भरकर पति की प्रतीक्षा करने लगी। हाथ में एक गन्ना लिये वे घर पहुँचे। बचा हुआ एक गन्ना पत्नी को देते हुए बोले, "लो तुम भी गन्ना खाओ।"

क्रोध में भरी उनकी पत्नी ने वह गन्ना उनकी पीठ पर दे मारा, जिससे गन्ने के दो टुकड़े हो गये। इस पर वे मुस्कराकर बोले, "अच्छा, अकेली खाना नहीं चाहती, तो मैं भी तुम्हारे साथ खाता हूँ।" कहकर दूसरा टुकड़ा उठाकर उसे चूसने लगे।

•

सहिष्णुता का अभाव

शकुन्त गुप्त

एक तालाब में भारण्ड नामक एक अजीब पक्षी रहा करता था, जिसके मुँह तो दो थे, लेकिन पेट एक ही था। एक दिन समुद्र के तट पर घूमते समय उसे एक अमृत जैसा फल मिला। जब वह फल पक्षी ने अपने एक मुँह में रखा तो उसे खाते हुए वह मुँह कहने लगा, "अहा! कितना मीठा फल है! इतना मजेदार फल मैंने जीवन में कभी नहीं खाया!"

दूसरा मुँह उस फल और उसके स्वाद से वंचित हो रह गया था। उसने जब उसके गुणगान सुने तो पहले मुँह से बोला, "मुझे भी थोड़ा-सा चखने दो!"

पहले मुंह ने हँस कर कहा, "तू क्या करेगा ? हमारा पेट तो एक ही है। उसमें वह चला ही गया है। उद्देश्य तो पूरा हो ही गया है।"

दूसरा मुंह उसी दिन से उदासीन हो गया और इस अपमान का बदला लेने के उपाय ढूंढ़ने लगा। अन्त में एक दिन उसे एक उपाय सूझ ही गया। वह कहीं से एक विषफल ले आया। पहले मुंह को दिखाते हुए वह बोला, "यह विषफल मैं लाया हूँ और अब मैं इसे खाऊंगा !"

पहले मुंह ने रोकते हुए कहा, "बेवक़ूफ ! यह काम मत कर। उसके खाने से हम दोनों ही मर जाएंगे।' फिर भी दूसरे मुंह ने पहले मुंह की नसीहत की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया और बदले की भावना से विषफल को खा ही लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि वह दो मुंहों वाला अजीब पक्षी मर गया। इस तरह आपसी भेद-भाव की वजह से दोनों ही मुख समाप्त हो गये। इसीलिए तो कहते हैं कि जीवन में सहनशीलता होनी चाहिए।

दयालुता, सद्भावना और सद्कर्मों का प्रेरक

ब्रजभूषण

अहमदाबाद के समीप एक गाँव में एक कुत्ते को किसी ने लाठी मारकर अधमरा कर दिया। कुत्ते की रीढ़ टूट गई, जिससे वह चल फिर सकने में असमर्थ हो गया और पड़ा-पड़ा कराहने लगा। एक किसान वहाँ आया और कुत्ते की दशा देखकर बड़ा दुःखी हुआ। उसने वहाँ तमाशा देखने के लिए उपस्थित लोगों से कहा, "आप लोग तमाशा क्या देख रहे हैं, इस बेचारे का कुछ इलाज करें।"

कुत्ते का तमाशा देखने वालों की भीड़ में खड़े एक वृद्ध ने व्यंग में कहा, "इसका इलाज कौन करेगा ? तुझे दया आ रही है तो ले जा इसे उठाकर अस्पताल।"

खेत पर जाते हुए उस किसान ने दया की चुनौती को स्वीकार किया। वह अपना काम छोड़कर कुत्ते को अस्पताल ले जाने में जुट गया। अस्पताल शहर में था और शहर गाँव से बहुत दूर था। शहर जाने के लिए बस में बैठना जरूरी था। वह कुत्ते को उठाकर बसस्टाप पर गया। जब वह कुत्ते को लेकर बस में घुसने लगा तो कन्डक्टर ने उसे रोक दिया और कहा, "बस इन्सानों के लिए है, जानवरों के लिए नहीं।"

किसान ने गिड़गिड़ा कर कहा, "भाई, इस कुत्ते को अस्पताल जाना है, इसकी हड्डी टूट गई है, मेहरबानी करो।"

उसकी बात सुनकर अन्य मुसाफिर हँस दिये। कन्डक्टर ने कहा, ऐसा ही दयावान बनता है तो कंधे पर उठाकर ले जा इसे अस्पताल।"

किसान की दया को यह दूसरी चुनौती थी। उसने कुत्ते को कंधे पर बिठाया और अस्पताल की ओर चल दिया। मार्ग में उसे गाँव के एक अध्यापक मिले। उन्होंने पूछा, "इस कुत्ते को उठाये कहाँ ले जा रहे हो पटेल ?"

किसान ने सारी कथा कह सुनाई। सुनकर ग्रध्यापक महोदय
उसके दयापूर्ण ग्राचरण से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने सोचा कि
धारा सभा जाते हुए मार्ग में कीचड़ में फँसे एक सुग्रर को ग्रमेरिका
के राष्ट्रपति ग्रब्राहमलिंकन ने निकाला ग्रौर गन्दे कपड़ों में ही भवन
में पहुँचे तो चर्चा ग्रौर प्रशंसा का विषय बन गया।

यज्ञस्तूप पर प्रस्तुत बलि के मेमने को गोद में उठाकर बुद्ध भग-
वान ने इतिहास के पृष्ठों पर ग्रपना नाम ग्रंकित कर दिया, पर इस
भोले-भाले दयावान किसान की दया को याद रखने वाला कौन है।
उन्होंने रास्ते के खर्च के लिए कुछ रुपये देने चाहे, मगर किसान ने
इंकार करते हुए कहा, "मेरे पास दो रुपये हैं, ईश्वर ने चाहा तो
काम हो जायगा।"

दया दृष्टि : पथ-प्रदर्श

—शास्त्री प्रताप सि

ात्माराम—एक धनी-मानी सेठ।
गवानदीन—सेठ का मुनीम।
ामेश्वर—गरीब मजदूर।
ीता—रामेश्वर की लड़की।

(समय—दोपहर के १२ बजे हैं। एक ग्रादमी धीरे-धीरे रामे
-फूटे मकान के पास ग्राकर मकान का दरवाजा खटखटात
न सुनता है ग्रौर एक सात वर्ष की बालिका (सीता) ध
सती है।)

सीता—कौन है, और क्या काम है ?

भगवानदीन—मैं हूँ सेठ जी का मुनीम। मकान का किराया लेना है। रामेश्वर कहाँ है ?

सीता—बापू मजदूरी करने गये हैं।

भगवानदीन—अच्छा, जब तेरे बापू आयें तो कह देना कि मुनीम जी किराया माँगने आये थे। कई महीने का किराया बाकी है। अगर अब किराया न दिया तो मकान से बाहर निकाल देंगे।

सीता—(आश्चर्य के साथ) तुम हम लोगों को घर से बाहर निकाल दोगे तो हम कहाँ रहेंगे ?

भगवानदीन—(हँसते हुए) मैं क्या जानूँ। तू कह देना इतवार तक किराया पहुँचा दें। नहीं तो सब समान उठा ले जाऊँगा।

सीता—सामान क्यों ले जाओगे ? अपना मकान न उठा ले जाओ।

भगवानदीन—तू बहुत चालाक लड़की है। मकान ले जाऊँ जिससे तू उसी में रहा कर और किराया न दिया कर। सामान ले जाऊँगा कह देना।

सीता—मैं यह बात बापू से नहीं कहूँगी। तुम जब भी आते हो तो बापू को बड़ा दुःख होता है।

भगवानदीन—बहुत मत बोल, जितना कहा है कह देना। हाँ, यह भी कह देना कि किराया सेठ जी की कोठी पर आकर दे जायें।

(भगवानदीन चला जाता है और सीता दरवाजा बन्द कर देती है।

(पर्दा गिरता है।)

दूसरा दृश्य

(समय—शाम के छः बजे हैं। रामेश्वर का वही टूटा-फूटा घर है और घर में चिराग की हलकी रोशनी हो रही है। सीता चुप चाप बैठी सिगड़ियाँ भर रही है। इतने में दरवाजा खटकता है

सीता डर जाती है कि कहीं सेठ जी का मुनीम तो नहीं आ गया। दरवाजा फिर खटकता है। वह फिर चुप रहती है, पर सोचकर कि बापू न आये हों, वह उठती है।)

सीता—कौन है ?

रामेश्वर—मैं हूँ, सीता। दरवाजा खोल। क्या सो गई ?

सीता—नहीं बापू, सोई नहीं थी। डर गई थी कि कहीं फिर वही, सेठ जी का मुनीम न आया हो।

रामेश्वर—क्यों, क्या आज आया था ?

(सीता सोचती रही कि बताने से बापू को दुःख होगा, और नहीं कहती तो मुनीम कहीं इतवार को सचमुच न सामान उठवा ले जाय।

रामेश्वर—क्या सोच रही है ? बोलती क्यों नहीं ? क्या मुनीम आया था ?

सीता—हाँ बापू, आज दोपहर को आया था।

रामेश्वर—कुछ कह रहा था क्या ?

सीता—हाँ, कह रहा था कि कई बार आ चुका हूँ। कह देना कि इतवार तक किराया दे जाएँ, नहीं तो सब सामान उठवा ले जाऊँगा।

रामेश्वर—(सोचते हुए) ठीक ही तो कह रहा था। कब तक बिना किराये के रहने देगा ? अच्छा चल कुछ खा ले, भूख लगी है न।

सीता—हाँ, बापू भूख तो बहुत जोर से लगी है। तुम्हें भी तो लगी होगी। क्या लाये हो ?

रामेश्वर—कुछ नहीं बिटिया। यह थोड़ा सा चना है। चल इसी को खा लें, और पानी पीकर सो जाएँ !

(दोनों चना खाने लगते हैं। रामेश्वर खाता जाता है और सेठ जी के किराये के लिये सोचता जाता है। कल जाऊँगा और सेठ जी से कह कर दया की भीख मागूँगा। फिर सीता को पास लिटा कर चुपचाप सो जाता है।

तीसरा दृश्य

(समय सुबह के आठ बजे हैं। सूर्य की लालिमा सफेदी से पुती हुई कोठी पर पड़ती है। स्थान सेठ जी का बाहरी कमरा है जिसमें दीवारों के किनारे बड़ी-सी एक आलमारी खड़ी है। एक तरफ छोटी सी तिजोरी दिखाई पड़ रही है; उसी के पास तख्त पर मुनीम जी बैठे अपना बहीखाता उलट-पलट रहे हैं। पास ही मसनद के सहारे सेठ जी भी अधलेटे हुक्के की नली मुँह में लिये हैं। इतने में बाहर से आकर दरवान खड़ा हो जाता है।)

सेठ जी—क्या है ?

दरवान—हुजूर, रामेश्वर आया है और आपके दर्शन करना चाहता है।

सेठ जी—उसे अन्दर भेज दो। (फिर हुक्का पीने लगते हैं।)

(रामेश्वर का प्रवेश)

रामेश्वर—(हाथ जोड़कर) हुजूर, आपने बुलाया है। हम जानते हैं कि आपका का किराया कई महीने का हो गया है, और मैं दे न सका हूँ।

सेठ जी—तो फिर हम क्या करें ? अगर किराया ही नहीं दे सकता है तो हमारा मकान खाली कर दे। (सेठ जी मुनीम जी तरफ देखकर) मुनीम जी इसके ऊपर कितने महीने का किराया बाकी है ?

मुनीम जी—(खाता पलट कर देखते हुए) सरकार, चार महीने का हो गया है और यह पाँचवा महीना चल रहा है।

सेठ जी—(रामेश्वर से) बोल रे इतने-इतने महीने का किराया हो गया है। अब अगर नहीं देना तो मकान छोड़ दे। नहीं तो हम सारा सामान बाहर फिकवा देंगे।

रामेश्वर—(रोते हुये) हुजूर, आप माई-बाप हैं। हम छोटी सी बिटिया को लेके कहाँ जाएँगे ?

सेठ जी—हम कुछ नहीं जानते। किराया दो या मकान छोड़ो।

रामेश्वर—हुजूर, दिन भर मजदूरी करित हैं। तो आपन और बिटिया का पेट ही एक जून भर पाईत हैं। उसमें किराया कहाँ से देईं।

सेठ जी—बस-बस, हमें कुछ नहीं मालूम। तू चाहे जैसे कर, इतवार तक किराया दे जाना। नहीं तो सामान फिकवा देगें।

रामेश्वर—हुजूर, कुछ दिन की मोहलत और देवें। हम जैसे भी होई आपका किराया दे देवें। (इतना कहकर हाथ जोड़े सेठ जी की तरफ देखता रहा है कि देखे अब क्या कहते हैं।)

सेठ जी—अच्छा सुनो। नौकरी करेगा ?

रामेश्वर—हाँ, हुजूर ! करिबे काहें नाहीं।

सेठ जी—अच्छा बोल क्या लेगा ?

रामेश्वर—हुजूर आपसे हम का कही, आप जो चाहे दें। सिर्फ दो जून का खाना और सोने को एक झोंपड़ी, बस।

सेठ जी—जा कल से यहीं आकर रह और काम कर। चार रुपया महीना मिलेगा।

रामेश्वर—बहुत है सरकार। आप बड़े दयालु हैं, बढ़ती होय। हमका और कुछ ना चाही। (जाता है)

सेठ जी—मुनीम जी, ठीक किया न ? मकान भी खाली हो जायगा, और घर पर एक नौकर आ जायगा। गरीब है बेचारा। आजकल मजदूरी भी नहीं मिलती क्या करे।

मुनीम जी—सरकार ! ठीक ही तो है। गरीब पर आप दया नहीं रखियेगा तो कौन रखेगा ? (सेठ जी हँसते हैं और उठकर चले जाते हैं।)

(पर्दा गिरता है।)

सामाजिक मान्यता : वर्ण-व्यवस्था का अभिशाप

ईशकुमार 'ईश'

कालपी का किला घाट प्रसिद्ध है। वहीं एक मंदिर था। थोड़ी ही दूर कुछ हरिजनों की बस्ती थी। उसी बस्ती में नथुग्रा नामक चमार था ग्रौर उसके एक लड़की थी भुनिया। ये लोग प्रायः यमुना का पानी नहाने के काम भी लेते थे ग्रौर पीते भी थे। मगर बरसात में यमुना का पानी बहुत गन्दा हो जाने से पीने के योग्य न रहता था। वे ग्रंधेरे-ग्रंधेरे किलाघाट के कुए पर जाकर पीने के लिए पानी भर लाया करते थे। मन्दिर के पुजारी के भी एक लड़की थी—राधा। राधा ग्रौर भुनिया दोनों ही पास के एक सरकारी विद्यालय में पढ़ती थीं। दोनों में बहुत प्रेम था उनकी कभी लड़ाई नहीं होती थी। राधा कुछ पढ़ने में कमजोर थी। भुनिया राधा को पढ़ाई में काफी मदद देती।

× × ×

बरसात के दिन थे। बस्ती में मलेरिया बुखार फैल रहा था। नथुग्रा की घरवाली ग्रौर भुनिया भी इसके शिकार हो गये। नथुग्रा दिन-भर काम करता, शाम को पेट का गढ़ा भरने को लिये रोटियाँ बनाता ग्रौर उसके बाद दोनों की दवा-दारू का प्रबन्ध करता। कभी ग्रपनी घरवाली ग्रौर भुनिया के दुख-दर्द को सहलाता। एक रोज वह बहुत रात गये तक जागा। फिर सो गया तो तड़के ग्रांख न खुल सकी। कुंए से पानी लाने को बहुत देर हो चुकी थी। पर पानी तो लाना ही था। न लाता तो पिया क्या जाता ?

नथुग्रा ने घड़ा उठाया ग्रौर कुंए की ग्रोर चल दिया। पौ फटने को ही थी। कुछ-कुछ मुंह ग्रंधियारा था। मन्दिर के पुजारी रामनारायण जी कुए पर स्नान कर रहे थे। नथुग्रा ने सोचा, मैं दूसरी ग्रार से क्यों न पानी भर लूँ। छूत कोई पुजारी जी को उड़कर थोड़े ही लग जायगी। जब कुंए की जगत पर ग्रौर कोई नहीं होता, तब कुंए के पानी में तो हम ग्रपना घड़ा डुबोते ही हैं। तो, ग्रगर

अब दूसरी तरफ से पानी भर लूँ तो क्या बात है।

नथुआ साहस करके कुएं की जगत पर पोंड़े से चढ़ गया।

जैसे ही नथुआ के घड़े ने पानी में डुब-डुब की वैसे ही पुजारी रामनारायण ने पुकारा—'कौन है ?'

'मैं हूँ नथुआ।' नथुआ ने दबी आवाज में उत्तर दिया।

नथुआ चमार को पुजारी जी खूब जानते थे। उसका नाम सुनते ही पुजारी जी के क्रोध की सीमा न रही। वे लाल-पीले होकर बोले—'अरे तू क्या था। दिखाई नहीं पड़ा कि मैं नहा रहा हूँ। सब बर्तन खराब कर दिये। नहाना-धोना सब बेकार हो गया।' यह कहते हुए वह नथुआ के पास आये। आव देखा न ताव घड़े में जोर से ठोकर मारी। घड़ा ठोकर खाकर चूर-चूर हो गया।

'चल यहाँ से। नीच कहीं के।'

'घर में एक बूँद पानी नहीं है। अब तो दूसरा घड़ा भी नहीं है। घरवाली और बिटिया बीमार हैं। जब वे पानी मांगेंगे तो उन्हें क्या पिलाऊँगा ?'

'मैं क्या करूँ जो बीमार हैं। मुझसे मांगता या कहता तो क्या तुझे एक बाल्टी पानी न मिलता। अब सब बरतन मुझे फिर से मांजने पड़ेंगे और फिर से नहाना पड़ेगा।'

'पुजारी जी ! इन्सान हम भी हैं और इन्सान तुम भी हो। हम में ऐसी क्या छूत है जो इस पार से उड़कर उस पार तुमसे चिपट जाती है। सिर्फ यही न ! कि हमारा काम जूते बनाना है।'

'बकवास किये जा रहा है। बदमाश कहीं का। पैर की जूती सिर पै ही चढ़े जा रही है। जाता है कि नहीं, वरना अभी सिर फोड़ दूँगा।'

बेचारा नथुआ खून की सी घूंट पीकर चला आया।

× × ×

एक दिन—राधा ने झुनिया से कहा—

'झुनिया। हमारे घर चलेगी ?'

'क्यों, क्या है तेरे घर।'

'मैं तुझे अपनी गुड़िया दिखाऊँगी। बड़ी सुन्दर गुड़िया है मेरी।

'अच्छा चलूँगी।'

'और दोनों सहेलियाँ स्कूल की छुट्टी होते ही चल दीं। जब
ाजे पर दोनों पहुँची तो भुनिया कुछ ठिठकने लगी। मगर राधा
े प्यार से उसका हाथ पकड़ लिया और 'आ न!' कहती हुई
खींचती हुई ऊपर अपने कमरे में ले गयी। बहुत देर तक दोनों
ी रहीं। खाने का समय हो गया था। माँ ने आवाज दी—
ओ, राधा! अरी राधा!!'

आई अम्मा।'

लो अम्मा, यह है मेरी सहेली। बड़ी अच्छी है यह। हम और
थ-साथ बैठते हैं, साथ-साथ खेलते हैं।'

अच्छा, आओ, बैठो। लो, खाना खाओ। रोज आ जाया कर
के साथ खेलने, अच्छा।

अच्छा।' भुनिया ने सिर हिला कर स्वीकृति दे दी।

ोनों सहेलियाँ भोजन करने लगीं। राधा की माँ ने पूछा—कहाँ
हो तुम?

ास ही जो नदिया के किनारे हरिजन बस्ती है न! वहीं।'

! हरिजन बस्ती में! तू हरिजन है?' राधा की माँ चौंकी।
ँ।'

रे! तेरा बुरा हो। सब भ्रष्ट कर डाला। भाग यहाँ से।'
निया बेचारी सिटपटायी-सी हाथ का कौर छोड़कर खड़ी हो
ाधा ने फिर हाथ पकड़ कर बिठाना चाहा। मगर भुनिया ने
री हाथ झटक कर खींच लिया।

ुत रात तक राधा की माँ ने सारा घर धोया। बर्तनों को
और फिर दोबारा रोटी बनाई। अगले दिन से राधा को
जना भी बन्द कर दिया गया।

+ + +

राधा बीमार हो गई। उसे बड़ा तेज बुखार था। आँखें मींचे बेहोश-सी पड़ी थी। नगर के नामी-नामी डाक्टर व वैद्यों का इलाज किया जा रहा था।

महीने से भी ज्यादा बीत गया। पर राधा अच्छी न हुई। डाक्टरों की समझ में उसका रोग ही न आया। एक दिन डाक्टर साहब घर पर ही आये हुए थे। उन्होंने राधा के इंजेक्शन लगाने का निश्चय किया। जैसे ही वे इंजेक्शन लगाना चाहते थे, तभी राधा ने आँखें खोलीं। उसने चारों तरफ देखा और भु···नि···या' कहते हुए करवट बदल ली। डाक्टर साहब ने जब पूछा तो उन्हें बताया गया कि यह एक हरिजन की लड़की है। राधा के साथ ही पढ़ती है। डाक्टर साहब ने कहा—'भुनिया को फौरन बुलाओ।'

'मगर वह तो हरिजन है।'

'हरिजन है तो क्या हुआ। है तो इन्सान। हरिजन के पास भी इन्सान का दिल है। रूप रंग में भी कोई भेद नहीं। फिर यह भेद-भाव क्यों है। आदमी हो, आदमी से प्रेम करो। उसका दुःख-दर्द पहचानो। जाओ, जल्दी जाओ। यह छुआछूत का भूत भगा दो। वरना यह लड़की जिन्दा नहीं रह सकती। इसे और कोई रोग नहीं।'

रामनारायण पुजारी, नथुआ के घर गये। नथुआ को आवाज दी। नथुआ ने बाहर निकल कर देखा तो पुजारी जी खड़े हैं। पूछा-

'क्यों पुजारी, कैसे आये?'

'भैया, राधा बीमार है।'

'तू वही है न जिसने मेरा घड़ा फोड़ा था और भुनिया को धक्के लगा कर निकाल देने वाली तेरी घरवाली अब भुनिया को को घुसने देगी?' नथुआ ने उसे याद दिलायी।

'नहीं भैया, हम भूल में थे। डाक्टर साहब ने अपने ज्ञान से हमारी आँखें खोल दी है। अब हम-तुम सब एक हैं।' यह कहते हुए पुजारी रामनारायण ने नथुआ का कौली भर ली और छाती से चिपटा लिया।

हमारी सामाजिक परम्परा का प्रतीक

अद्‌भुत पुरस्कार

डॉ॰ रामचरण महेन्द्र

[स्थान—जयपुर के समीप का बीहड़ जंगल।

एक दिन जयपुर के महाराजा रामसिंह अपने साथियों को लेकर जंगल में शिकार के लिए गये। वे इधर-उधर हरिण, सिंह, चीते आदि की खोज करते रहे, किन्तु कोई जानवर शिकार के लिए दिखाई न दिया। अन्त में एक जंगली सुअर को देख महाराज ने उसका पीछा किया और भागते-भागते बहुत दूर निकल गए। फिर भी उसे पकड़ न सके। महाराज अकेले थे, साथी बिछुड़ गए थे।]

महाराजा रामसिंह—(एक झोंपड़ी के पास खड़े हैं) भाई झोंपड़ी वाले! झोंपड़ी वाले!! कोई है इस झोंपड़ी में जो मुसाफिर को पानी दे! पानी!! पानी चाहिए! गला सूख रहा है!! प्राण निकले जा रहे हैं!

(झोंपड़ी से उत्तर कौन है? कौन है?

रामसिंह—भाई, मुसाफिर है। बाहर निकलो। दो घूंट पानी चाहते हैं। प्यास के मारे प्राण निकले जा रहे हैं।

—मुसाफिर हो? ठहरो मैं अभी आती हूँ।

(थोड़ी देर बाद एक ओर से एक वृद्धा स्त्री का प्रवेश)

रामसिंह—माई मैं हूँ एक मुसाफिर। इस तरफ चलते-चलते रास्ता भूल गया है। चारों तरफ जंगल-ही जंगल है। कोई रास्ता नहीं सूझता, न कोई बताने वाला है। बेहद थक गया हूँ। प्यास के मारे प्राण निकले जा रहे हैं। कृपा कर ईश्वर के लिए थोड़ा पानी दो।

(प्यार से) बेटा! पानी में ईश्वर का नाम लेने की कौन-सी जरूरत है—मैं अभी पानी लाती हूँ (जाती है और मिट्टी के

सुधि नहीं ली। पिछले ही दिनों मालूम हुआ था कि उसने जयपुर के महाराज रामसिंह के यहां नौकरी कर ली है। तुम पूछते हो, मेरे भरण-पोषण का काम कैसे चलता है? तो सिपाही जी, उसका कोई स्थायी उपाय नहीं है···मुसाफिर लोग यहां आकर पानी पीते हैं और मुझे कुछ देना चाहते हैं, लेकिन मैं किसी से कुछ भी नहीं लेती···ईश्वर ही खुद जीविका का प्रबन्ध कर देते हैं···।

म० रामसिंह—क्यों माईजी कुछ लेने में क्या हर्ज है?

वृद्धा—प्यासे को पानी पिलाकर उससे कुछ ले लेने में तो बड़ा भारी पाप है। फिर तो सेवा क्या हुई, व्यापार बन गया··· मुझे ऐसा व्यापार नहीं करना है···ईश्वर के दरबार में जाकर क्या जवाब दूंगी?···जंगल के फल, लकड़ियाँ, उपले, मृगछाला इत्यादि इकट्ठे कर लेती हूं और उन्हें बेचकर अपना निर्वाह करती हूं···।

म० रामसिंह—मां जी, आपकी आपबीती सुनकर मुझे तो रोना आता है। दुनियां भी कितनी स्वार्थमयी है···तुमने पुत्र को पाल-पोस कर इतना बड़ा किया···आशा लगाये रखी···अब वह तुमसे अलग बैठा है।

वृद्धा—(रोकर) सिपाही जी, इस अवस्था में जो मुझे पुत्र की जुदाई मारे डालती है (फूट-फूट कर रोने लगती है) भंवरसिंह! मेरा प्यारा पुत्र! न जाने कहां है?

म० रामसिंह—(सहानुभूति से अभिभूत होकर) माई जी! रोओ नहीं, (अपने रूमाल से उसके आंसू पोंछते हुए) मन को भारी मत करो···कभी न कभी अवश्य लौट आयेगा। वह तुम्हें नहीं भूल सकता···तुम्हारा दूध जरूर उसे जोर मारेगा··· तुम्हारा वात्सल्य जरूर उसे खींच कर लायेगा···निराश नहीं होना चाहिए···।

वृद्धा—सिपाही जी, सुना है कि महाराजा रामसिंह बड़े दयालु हैं। उनके यहां मेरा बेटा नौकरी करता है। क्या तुम कृपा कर उनसे किसी तरह मेरी भेंट करा सकते हो ?

म० रामसिंह—मां जी, मैं एक दिन राजा से तुम्हारी भेंट जरूर करा दूंगा।

वृद्धा—(हर्ष से) तुम लेट जाओ बेटा, बैठे-बैठे थक गये हो। थकान मिटा लो। चटाई ले लो।

म० रामसिंह—(झोंपड़ी में पड़ी चटाई पर लेटते हुए) हां, मां जी बेहद थकान......। हाथ-पावों मे दर्द है...आखें झिपी जा रही हैं...अब तो आराम करता हूं...शाम को उठकर अपने घर जाऊंगा...।

[सो जाते हैं]

[दूसरा दृश्य]

(जयपुर के महाराजा रामसिंह का दरबार। महाराजा ने वृद्धा के पुत्र का पता लगवा कर उसे बुलवाया है। दरबार लगा हुआ है, युवक भवरसिंह हाथ जोड़े खड़ा है।)

म० रामसिंह—तुम्हारा नाम क्या है ?

युवक—अन्नदाता, मुझे भंवरसिंह कहते हैं।

म० रामसिंह—भंवरसिंह! तुम्हारे परिवार में कौन-कौन हैं ?

भंवरसिंह—अन्नदाता, मेरी औरत-बच्चे इत्यादि।

म० रामसिंह—तुम्हारे माता-पिता हैं ?

भंवरसिंह—(आश्चर्य से) पिताजी का अन्त हो गया...जिन दिनों गाँव में मलेरिया फैला था, उन्हीं दिनों स्वर्ग सिधार गए...बड़े अच्छे थे...मुझे बड़ा प्यार करते थे...तब से गांव अच्छा न लगा, अन्नदाता की चाकरी में आ गया हूँ...अच्छे दिन कट रहे हैं।

म० रामसिंह—और तुम्हारी मां का क्या हुआ ?

भंवरसिंह—जी मैं तो अन्नदाता की नौकरी पर चला आया⋯वे गांव में रहीं⋯साथ न आईं⋯मैं उन्हें वहीं रुपये भेजता रहा हूं⋯अब वहां मनीआर्डर भेजा तो वापिस आ गया⋯ मालूम होता है ईश्वर ने उसे भी बुला लिया है।

(झूठे आंसू बहाता है)

म० रामसिंह—क्या तुमने खुद वहां जाकर जांच की वह मरी या जिंदा है ?

भंवरसिंह—अन्नदाता, नहीं। मनीआर्डर लौट आने से ही मैं निराश होकर रोने लगा⋯रो पीट कर बैठ रहा⋯।

म० रामसिंह—झूठ ! बिल्कुल बनावटी बात है ! तुम मुझे बहका रहे हो, भंवरसिंह ! इस संसार में तुम्हें दूसरी पत्नी मिल सकती है, बच्चे मिल सकते हैं, धर्म भाई बना सकते हो, लेकिन माता और पिता देव-तुल्य आत्माएं हैं, जो एक बार जाने के बाद कभी भी नहीं मिलते। जो पुत्र इनकी सेवा नहीं करता, वह आजन्म दुख पाता है। जिस परिवार में माता-पिता की पूजा नहीं होती, उनके प्रति श्रद्धा नहीं दिखाई जाती, वह नष्ट हो जाता है⋯।⋯(आवाज देते हैं) अरे कोई उस वृद्धा मां को हाजिर करो तुम एक ओर छिप कर खड़े हो जाओ⋯।

(छुप जाता है। भयभीत वृद्धा आती है।)

वृद्धा—(डरती हुई) अन्नदाता ! अन्नदाता ! मुझे क्षमा करें।

म० रामसिंह—(दिलासा देते हुए) मां जी डरो मत। यों मत घबराओ। तुम जयपुर के महाराजा रामसिंह से मिलना चाहती थीं न ? आज तुम उन्हीं के सामने हो।

वृद्धा—(चकित रह जाती है) अन्नदाता ! मुझे आश्चर्य हो रहा है कि आपको ये सब बातें कैसे मालूम हो गईं ?

म० रामसिंह—(आवाज धीमी कर सहानुभूति से) मां जी, आपने मुझे

पहचाना नहीं···शायद आंखों से कम दीखता है···लो मैं आगे आए जाता हूँ···(कुछ आगे आकर) अब अच्छी तरह देखो और पहचानो मैं कौन हूँ ?

वृद्धा—(पहचान कर आश्चर्य से) ओह ! पानी पीने वाले सिपाही जी ! तुम यहां !

रामसिंह—हां, माँ जी ! तुम्हारी झोंपड़ी में कल पानी पीने वाला मुसाफिर मैं ही जयपुर नरेश महाराज रामसिंह हूँ···।

वृद्धा—(हाथ जोड़ कर) महाराज, मेरा अपराध क्षमा करें। मुझ से अनजाने में आपका जो अनादर हुआ हो, सत्कार में जो त्रुटि रह गई हो, उसकी माफी दी जाए।

म० रामसिंह—माँ जी, भय मत करो ! दरबार में तुम्हारी कोई हानि नहीं हो सकती। तुम अभय हो ! (आवाज देते हैं) भंवरसिंह आगे आओ ! (वह आगे आता है) यह रहा तुम्हारा खोया पुत्र···लो इसे सम्हालो···छूटा हुआ तीर खोज निकाला है···फिर न भटक जाय ! सम्हालो तो अपनी खोई हुई सम्पत्ति···(वृद्धा आश्चर्य से चकित हो जाती है।)

भंवरसिंह—(लज्जित होकर) अन्नदाता ! मैं अपनी कृतघ्नता पर खुद मरा जा रहा हूँ···मुझे बड़ा दुःख है कि मैंने अपनी वृद्धा माता का तिरस्कार किया···महाराज मुझे माफ करें। अब ऐसा न होगा···मैं सदा इसे आदर सहित अपने आप रखूँगा···सेवा करूँगा (माता के पांव छूते हैं) माफ करो।

म० रामसिंह—लेकिन इसकी सजा तुम्हें जरूर मिलेगी···और वह सजा यह है कि तुम्हें अच्छे पद पर आसीन किया जाएगा। मैं तुम्हारी तरक्की भी कर रहा हूँ। इसकी रिपोर्ट की जाय···।

सब—अन्नदाता की जय हो ! अन्नदाता की जय हो !!

[पर्दा गिरता है]

अनुशासन

भाईचारा

पड़ोस-भावना

अनुशासन

अनुशासन शब्द दो शब्दों के योग से बना है--अनु+शासन। शासन के पीछे अर्थात् नियंत्रण में। साधारणतः राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, कौटुम्बिक तथा अन्य किसी प्रकार की व्यवस्था का अनुकरण और पालन करना अनुशासन है। शरीर की दुर्बलताओं और मन की चंचलता पर विजय पाने के प्रयास को भी अनुशासन कहते हैं। सब प्रकार की विधि का अनुगमन और निषेध का प्रतिरोध अनुशासन कहलाता है।

आदर्श जीवन की प्राप्ति के लिए बुरी वृत्तियों के त्याग के प्रयास और अच्छी वृत्तियों के ग्रहण करने के प्रयत्न का दूसरा नाम अनुशासन है। अतः मन, वचन और कर्म तीनों के संयम से जो व्यक्ति अपने मन पर नियंत्रण कर सकता है, उसके वचन तथा कर्म दोनों स्वयं अनुशासित हो जाते हैं। वाणी का अनुशासन मन और कर्म दोनों को निर्मल बनाने में सहायक है और कर्म की पवित्रता वाणी में महत्त्व और मन में पुण्य भावना उत्पन्न करती है।

अनुशासन-हीनता समाज और राष्ट्र, दोनों के लिए घातक है। आज भारत में चहुँ ओर अनुशासन-हीनता दिखाई देती है। राष्ट्र की सर्वोच्च अधिकार सम्पन्न 'लोक-सभा' से लेकर विद्यार्थी वर्ग तक सभी इस महामारी के शिकार हैं। दूसरे को उपदेश देने वाले राजनीतिज्ञ जब स्वयं अनुशासनहीनता को निम्न कोटि का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, तो लगता है बाड़ ही स्वयं खेत को खाने लगी है। रक्षक ही स्वयं भक्षक बन गया है।

अनुशासन-हीनता से राष्ट्र की लाखों और करोड़ों रुपए की सम्पत्ति की हानि हो चुकी है। राष्ट्र के जीवन में तोड़-फोड़ की वृत्ति घर कर गई है। समाज में उच्छृंखलता आ गई है। अनाचार और अनैतिकता बढ़ गई है। कर्त्तव्य-परायणता काफूर हो चुकी है। परिणामतः राष्ट्र-भक्ति की भावना राष्ट्र-द्रोह में बदल रही है, जो राष्ट्र के विनाश की चरम सीमा होगी।

अनुशासन शिक्षा का बुनियादी पत्थर है। अध्ययन अनुशासन के बिना अधूरा है। विषम परिस्थितियों में भी अनुशासन कायम रखकर छात्र अपने चारित्रिक बल को प्रदर्शित कर सकते हैं।

छात्र-जीवन भावी जीवन की आधारशिला है। आज के छात्र ही कल के नागरिक होंगे। देश के कर्णधार होंगे। उनमें अनुशासन की भावना उत्पन्न करना और उनके जीवन को अनुशासित करना आज के युग की अनिवार्य आवश्यकता है।

पीरियड परिवर्तन पर शोर-गुल न करना, मध्यान्तर तथा पूर्ण अवकाश में स्कूल-सीमा में हलचल तो हो, किन्तु उच्छृंखलता न करना, अध्ययनार्थ कक्षा-परिवर्तन में पंक्ति बद्ध मौन चलना अनुशासन-सोपान की सीढ़ियाँ हैं।

खेल और सदन अनुशासन के बिना पंगु हैं। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए दोनों अनिवार्य हैं। अतः खेलकूद और सदन-व्यवस्था द्वारा छात्र-जीवन में अनुशासन की नींव डाली जा सकती है।

जीवन में भ्रातृभावना का बहुत महत्व है। अपने धर्म, संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, रीति-रिवाज की भिन्नता में अपने सम्बन्धों को स्थिर रखने का मध्यम है—भ्रातृत्व भावना। अपने गली, मोहल्ले, नगर और राष्ट्र में परस्पर प्रेम का आधार है—भाई-चारा। इतना ही नहीं; विश्व-बंधुत्व की कल्पना भारतीय संस्कृति की ही देन है।

उत्सवों एवं खुशी के अवसरों पर गली मुहल्ले में बांटी जाने वाली 'भाजी' इसी भाई चारे की नींव सुदृढ़ करने का प्रयास है। भाजी में दिए जाने वाले दो लड्डू या पचास ग्राम मिष्ठान्न का मूल्य नहीं, मूल्य है भावना का, बंधुत्व-भावना का।

हिन्दी-चीनी भाई-भाई, हिन्दी रूसी भाई-भाई के नारे भारत और चीन, रूस और भारतवासियों के भ्रातृभाव के प्रतीक थे।

भाई चारे से परस्पर प्रेम बढ़ता है। एक दूसरे के सुख-दु:ख में सहभागी होने की भावना बढ़ती है। समता और सहयोग की भावना का उदय होता है। जीवन सुखमय बन जाता है।

भ्रातृत्व भावना को सोख के सर्वश्रेष्ठ साधन हैं खेल के मैदान, स्काउटिंग, गर्लगाइड और सदन व्यवस्था। इस सबसे छात्र-छात्राओं के मन में 'टीम स्प्रिट' (Team spirit) की भावना-आती है। टीम स्प्रिट का विकसित रूप भाई-चारा है। दूसरे, स्काउटिंग और गर्ल गाइड द्वारा आहतों की सेवा-सुश्रूषा भ्रातृत्व भावना को बल देते हैं।

पड़ोस-भावना

पड़ोसी सम्बन्धियों से भी बढ़कर महत्त्वपूर्ण है। तभी कहा जाता है, 'रिश्तेदार दूर, पड़ोसी नेड़े (समीप)'। अकस्मात् कोई कष्ट आप पर आया है। पड़ोसी दौड़कर तुरन्त आपकी सहायता करेगा, जबकि रिश्तेदारों के आते-आते तो उस कष्ट का निवारण भी हो चुका होगा।

बच्चा छत से गिर पड़ा है। घर में कोई पुरुष नहीं है। रिश्तेदार फर्लांग-दो फर्लांग पर रहते हैं। उन्हें बुलाने में देर लगेगी। पड़ोसी टैक्सी लाता है। बच्चे को तुरन्त अस्पताल पहुँचाता है। बच्चे का जीवन डाक्टरों के हाथ में है। तुरन्त उपचार शुरू हो गया। पड़ोसी बच्चे के पिता को दूरभाष पर सूचना देता है। बच्चे का पिता घबराता हुआ अस्पताल पहुँचता है। तब तक बच्चे को अस्पताल से छुट्टी मिलने को तय्यारी है। बच्चे का जीवन अब पूर्णतः सुरक्षित है। पड़ोसी की सहायता ने बच्चे के प्राणों की रक्षा कर दी है।

पड़ोसी चाहे किसी पद पर हो, कितना ही उच्च अधिकारी या धनपति हो, फिर भी पड़ोसी के नाते पड़ोस-भावना तो उसके हृदय में रहेगी ही। कारण, वह 'हमपाया नहीं, हमसाया' तो है।

अच्छा पड़ोसी जीवन के लिए सुख का स्रोत है। आनन्द का प्रदाता है; कष्टहारक और मंगलकारी है। वह सच्चा मित्र, सखा, बन्धु है।

किन्तु कहीं पड़ोसी के मन में ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, शत्रुता हो गई तो समझो जीवन नरक तुल्य बन गया; बिना बुलाए यमराज को निमंत्रण दे दिया। छोटी-छोटी बातों पर झगड़े, गाली-गलौज मार-पिटाई, पुलिस-अदालतों के दर्शन आपकी दिनचर्या के अंग बन जाएंगे। पड़ोसी की दो आँखें फोड़ने के लिए अपनी एक फूटने में भी हित नजर आने लगेगा।

राष्ट्र की दृष्टि से भी देखें तो पड़ोसी राष्ट्र सदा कल्याणकर होने चाहिएँ, किन्तु भारत के दुर्भाग्य से उसके अपने अंग, किन्तु अब पड़ोसी पाकिस्तान और बर्मा, दूसरी ओर चीन हमसे शत्रुता रखते हैं। चीन और पाकिस्तान तो हम पर आक्रमण भी कर चुके हैं। उनके कारण न केवल देश की सीमाओं को खतरा है, अपितु बहु-संख्या में जासूस भेजकर उन्होंने राष्ट्र-जीवन में अशान्ति उत्पन्न की हुई है।

अतः हमें गली-मुहल्ले में, नगर-नगर में, प्रांत-प्रांत में, देश-विदेश में पड़ोस-भावना से रहना चाहिए। इसी में व्यक्ति का, समाज का और राष्ट्र का हित है।

★

स्काउटिंग तथा गर्ल-गाइड

अनुशासन, भाईचारा और बंधुत्व की भावना का त्रिगुण, स्काउटिंग और गर्लगाइड में निहित है। इनसे बालक-बालिकाओं में नियन्त्रण और अनुशासन की भावना में वृद्धि होती है। आपस में संगठन तथा मैत्री भाव भी उदय होता है। जिसके मूल में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना निहित है। व्यावहारिक ज्ञान का भी विकास होता है।

उसकी तीन प्रतिज्ञाएं हैं—(१) प्रत्येक मनुष्य की सहायता के लिए सदा उद्यत रहूँगा। (२) ईश्वर, राज्य तथा देश के प्रति भक्ति रखूँगा। (३) बालचर संस्था के नियमों का पालन करूँगा।

लड़कों के लिए स्काउटिंग होती है। कुछ नियम परिवर्तन के साथ लड़कियों के लिए इसका नाम 'गर्लगाइड' है। समय-समय पर इनके कैम्प लगते हैं। कैम्प में शारीरिक व्यायाम से शरीर गठीला और फुर्तीला बनता है। प्राथमिक उपचार (First Aid) की शिक्षा दी जाती है, जिससे रोगियों की तत्क्षण सेवा की जा सकती है।

छोटे स्काउटों को पेड़ों पर चढ़ना, गांठे लगाना, निशान पहचानना आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। बड़ी श्रेणी के स्काउटों को झंडी के निशान, तम्बू लगाना, प्राथमिक चिकित्सा-ज्ञान का प्रशिक्षण देते हैं।

जनता की सेवार्थ मेलों में कैम्प लगते हैं। जनता का मार्ग-दर्शन करना, खोये हुए बच्चों को उनके घर पहुँचाना तथा सेवा के अन्यान्य कार्य करना उनका ध्येय है। रामलीला के दिनों में रामलीलाओं की व्यवस्था स्काउट्स ही करते हैं। पुलिस तो रामलीला क्षेत्र के बाहर की व्यवस्था देखती है।

अतः छात्रों को स्काउटिंग और लड़कियों को 'गर्ल-गाइड' संस्थाओं का सदस्य बनना चाहिए। वर्ष में एक बार स्काउटिंग तथा गर्ल-गाइड के कैम्प लगाने चाहिएं।

संवेदनशीलता

आत्मचेतना

कुछ प्राप्त करने की भावना

पहचाने जाने की भावना

दूसरे के दुःख, कष्ट, पीड़ा में सहभागी बनना संवेदना प्रकट करना है। इसका भाव संवेदनशीलता कहलाती है।

संवेदना के आंसुओं से मन का पाप धुल जाता है और आत्मा निर्मल होती है। संवेदनशीलता में वह चमत्कार है जिससे लाखों का दुर्भाग्य थोड़े से लोगों की उदारता से सौभाग्य में बदल सकता है।

समाज में सहस्रों-लाखों लोग मूक रहकर जीवन की असह्य यंत्रणाएं सहन कर रहे हैं। उस समय आपको घोर पश्चात्ताप होगा, जब आप जानेंगे कि बड़ी सरलता से आप किसी के मन का भार हलका कर सकते थे, तन पर वस्त्र देने की सुविधा कर सकते थे, किसी को अन्न के एक-एक दाने के लिए तरसते हुए प्राण छोड़ने से बचा सकते थे, अपने सहपाठी के अध्ययन में सहयोग देकर उसको अनुत्तीर्ण होने से रोक सकते थे, पड़ोसी की समय पर जरा सी सहायता करके उसे काल का ग्रास बनने से बचा सकते थे, उस समय आप आंचल में मुंह छिपाकर क्यों बैठे रहे ?

वर्तमान युग में संवेदनशीलता का अभाव बढ़ता जा रहा है। पड़ोसी दुर्घटनाग्रस्त हुआ है, चोटें अधिक आने के कारण वह मृत्यु-शय्या पर पड़ा है। हम उसको दवा नहीं दे सकते, उसकी चोटें भर नहीं सकते, किन्तु एक काम कर सकते हैं। उसके पास बैठकर संवेदना प्रकट कर उसके कष्ट को दो क्षण के लिए विस्मरण तो करा सकते हैं। उसके स्वास्थ्य के लिए दुआ तो मांग सकते हैं। हम वह भी नहीं करते। उलटा उसकी मृत्यु पर मगरमच्छ के आंसू बहाकर दो-चार फर्लांग तक शव-यात्रा में जाकर अपने कर्तव्य की पूर्ति समझते हैं। यह संवेदना नहीं, उसका ढोंग अवश्य है।

संवेदना प्रकट करने वाले को आत्मिक संतोष और सुख मिलता है। उसके शरीर में स्फूर्ति आती है। उसकी चेष्टाएं एक स्थिर आदर्श का संकेत करती हैं। जीवन का सम्पूर्ण सौंदर्य उसके हृदय पर शीशे की भांति चित्रित हो जाता है।

भारत के ऋषि-मुनि संवेदनशीलता के मूर्तिमन्त रूप थे। मानव के दुखों को अपनी वेदना समझकर जीवन में उनका प्रकटीकरण करते थे। उसके लिए संत ज्ञानेश्वर का उदाहरण पर्याप्त होगा।

वे शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों से शुद्धिपत्र लेने पैठण पहुँचे। वहाँ एक दुष्ट ने अपने भैंसे का नाम ज्ञानदेव बताकर दोनों में अन्तर जानना चाहा। संत ज्ञानेश्वर ने कहा, 'भैंसे और हममें अन्तर क्या है? नाम और रूप तो कल्पित हैं। आत्मतत्व एक ही है। भेद की कल्पना ही अज्ञान है।'

तब उस दुष्ट ने भैंसे की पीठ पर चाबुक मारने शुरू कर दिए। चाबुक तो पड़ रहे थे भैंसे पर, पर मार के निशान उभर कर आ रहे थे ज्ञानेश्वर की पीठ पर! यह देखकर दुष्ट आदमी ज्ञानेश्वर के चरणों में गिरकर क्षमा मांगने लगा।

संवेदनशीलता जीवन का अनिवार्य गुण है, हमें उत्तरोत्तर उसे अपने अन्दर विकसित करना चाहिए।

❁

… अजर और अमर मानता है। मृत्यु के उपरान्त शरीर के पंचभूत पाँच तत्वों (जल, वायु, तेज, आकाश, पृथ्वी) में विलीन हो जाते हैं, शेष रह जाती है आत्मा।

आत्मा सब प्राणियों में एक समान है। वह सदा कार्यशील रहती है। जिस प्रकार बादल से ढक जाने पर भी चन्द्रमा अपना धर्म नहीं छोड़ता, प्रकाश करता है, उसी प्रकार मूर्ख के अन्दर भी आत्मा अपना धर्म नहीं छोड़ती, निर्दोष और पूर्ण रहती है।

मन बड़ा चंचल है, इसलिए उसकी चौकसी करो। वह अनियंत्रित है, अतः उसे अपने दाब में रखो। वह उपद्रवी है, अतः उसे वश में रखो। वह पानी से पतला, मोम से भी कोमल तथा वायु से अधिक चंचल है तब उसे कोई वस्तु कैसे बाँध सकती है ?

जीवन में अनेक बार यह अनुभूति होती है कि जब हम बुरा कार्य करने को प्रस्तुत होते हैं तो आत्मा नहीं मानती, शरीर कुछ असमर्थता प्रकट करने लगता है, किंतु मन का दुराग्रह जब बुरा कार्य करवा ही लेता है तो जब भी वह अपने कृत्य पर विचार करेगा, उसकी आत्मा उसे धिक्कारेगी। यह है आत्मा की आवाज। इसे हर प्राणी चाहे तो सुन सकता है।

सत्य ही आत्मा का उद्देश्य है। अनुभव और बुद्धि उस सत्यता को ढूँढने के साधन हैं। आत्मा की परीक्षा, अपने उत्पन्नकर्ता का ज्ञान और उसकी आराधना ही वस्तुतः सत्य-ज्ञान-प्राप्ति के साधन हैं यही आत्म-चेतना का मूल है।

महाभारत के शान्ति पर्व में सत्य के तेरह रूप बताए गये हैं—'अपक्षपात, इंद्रिय-निग्रह, ईर्ष्या न करना, सहिष्णुता, लज्जा, दुःख-सहन, गुण में दोष न देखना, दान, ध्यान, उत्तमता, धारणा, दया और अहिंसा।'

आत्मचेतना के लिए इन तेरह सत्य रूपों को जीवन में चरितार्थ करना चाहिए।

कुछ प्राप्त करने एवं पहचाने जाने की भावना

विद्यार्थी-जीवन तय्यारी का काल होता है। इसमें विद्यार्थी बाहरी वातावरण से कुछ अनमोल मोती कूड़े-करकट सहित चुनकर अपनी झोली में भरता है। मोती और कूड़े-करकट की पहचान एवं श्रेष्ठ वस्तु का ज्ञान विद्यार्थी को करना चाहिए। उसमें तो हंस की तरह दूध और पानी को पृथक् करने का ज्ञान और जौहरी की भाँति हीरे की पहचान की शक्ति होनी चाहिए।

यह ज्ञान उपदेश की अपेक्षा प्रत्यक्ष प्रदर्शन से अधिक आता है। गुरु का उपदेश 'सच बोलो' विद्यार्थी पर उतना प्रभावशील न हो सकेगा जितना सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक का प्रभाव होगा। विभिन्न प्रांतों की वेश-भूषा और श्रेष्ठ परिधान अपनाने के भाषण से 'फेन्सी ड्रेस' कार्यक्रम विद्यार्थी-वर्ग में पहचानने की शक्ति पैदा करेगा। सफाई और सजावट के लेख विद्यार्थी-जीवन में क्रांति न ला सकेंगे, किंतु स्कूल की 'सजावट प्रतियोगिता' उनके मन पर अवश्य प्रभाव डालेगी। इसी प्रकार स्कूल में निर्मित विभिन्न सदन-व्यवस्थाएँ विद्यार्थी को जिज्ञासु बनाएंगी।

भारत-पाक युद्ध के दिनों में धन-सग्रह के लिए देश-भक्ति-पूर्ण एवं दान की प्रेरणा देने वाला नाटक 'दानवीर भामाशाह' खेला गया। सिनेमा-सितारों ने स्थान-स्थान पर जाकर अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किए, जिनसे जनता में देश-प्रेम भी उत्पन्न हुआ और धन-संग्रह भी। जीवन में प्रत्यक्ष प्रभाव की दृष्टि से प्रत्येक कक्षा की ओर से वर्ष में एक नाटक खेला जाना चाहिए।

फैंसी ड्रेस कार्यक्रम अपने आप में एक रोचक एवं ज्ञानवर्धक कार्य है। फैंसी ड्रेसधारी किसका प्रतीक है? इसके द्वारा दूसरे को पहचानने की शक्ति बढ़ती है। एक स्कूल में फैंसी ड्रेस कार्यक्रम में

छात्रा ने 'घूस' का वेश धारण किया था और दूसरी ने अपने को कघर' रूप में प्रस्तुत किया था। यद्यपि अन्य छात्राओं ने विभिन्न ों एवं विभिन्न राष्ट्रों की वेश-भूषा पहन कर अपना प्रदर्शन ा था, किंतु प्रथम पुरस्कार 'घूस' और द्वितीय पुरस्कार कघर' को मिला। नई-नई बातें सोच कर, जीवन को वस्त्रों ा नवीनतम रूपों में प्रस्तुत करने की शक्ति देने वाले 'फैंसी-ड्रेस' र्यक्रम भी वर्ष में एक बार अवश्य होने चाहिएँ।

प्रायः स्कूलों में सदन-व्यवस्था है। इन सदनों के नाम महापुरुषों नाम पर होते हैं। जैसे टैगोर हाउस, झाँसी की रानी हाउस, गी हाउस आदि। प्रत्येक सदन के छात्र अपने नेता और सचिव का चुनाव करते हैं। प्रति सप्ताह या प्रति मास अपने विविध रोचक र्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। इससे विद्यार्थी-वर्ग में जहाँ अनुशासन में ने की प्रवृत्ति बढ़ती है, वहाँ सूझ बूझ द्वारा एवं दूसरों के द्वारा स्तुत कार्यक्रम द्वारा वह अपना ज्ञानवर्धन करता है।

तीसरे, अपने सदन के सदस्यों से हेल-मेल बढ़ने के कारण ात्रता बढ़ती है। परिणामतः वे परस्पर दुःख और सुख में सहभागी ते हैं। इस प्रकार संवेदनशीलता का भाव उत्पन्न होता है।

सजावट-प्रतियोगिता कुछ सीखने का श्रेष्ठ ढंग है। घर की जावट, कक्षा की सजावट, स्कूल की सजावट, बगीचे की सजावट, ालमारी की सजावट प्रतियोगिता रखकर विद्यार्थी-वर्ग में सफाई ौर सजावट के प्रति प्रेम उत्पन्न किया जा सकता है।

इन रोचक कार्यक्रमों को स्कूल के अतिरिक्त कार्यक्रमों में अवश्य यान देकर विद्यार्थी-वर्ग में जिज्ञासा और पहचानने की भावना ो स्थान देना चाहिए।

जानवरों और पक्षियों के प्रति दयालुता

बाजार में एक पड़चूने की दुकान है। दुकानदार सौदा तोल रहा है। अकस्मात् एक गाय उधर से निकली। चना गाय का प्रिय खाद्य पदार्थ है। गाय उस ओर चली। अभी वह चनों में मुँह मार भी नहीं पाई थी कि दुकानदार के लड़के ने गाय को जोर से एक, दो, तीन, चार, पांच डंडे मार कर अधमरा-सा कर दिया। इस दृश्य को देखकर सौदा खरीदने वाले ग्राहक ने लड़के की लकड़ी छीनकर जोर से उसी पर दे मारी और कहा, एक तो नगर-निगम की सड़क पर चने रखते हो और ऊपर से जानवरों को इतना मारते हो। जनता इकट्ठी हो गई। सभी लोग दुकानदार और उसके लड़के को लानते डालने लगे।

क्या जानवरों और पक्षियों को हम चाहे जिस प्रकार चोटें मारें, पीटें, आहत करें? क्या हमें पूछने वाला कोई नहीं है? चलते हुए कुत्ते को ढेला मार दें, पेड़ पर बैठी कोयल और बिजली की तार पर बैठे कौए को गुलेल का निशाना बनाएँ, सड़क या गली में आती-जाती गाय और भैंसों को लकड़ी से मार कर उनकी खाल पर अपने कुकर्मों के चिह्न अंकित कर दें, इन कार्यों के लिए हम अपने को स्वतन्त्र समझते हैं।

किन्तु एक प्रश्न क्या कभी मन में आया है—इन जीव-जन्तुओं—पशुपक्षियों के भी प्राण हैं। ये भी हमारी भांति दुःख-सुख अनुभव करते हैं। कष्ट एवं पीड़ा अनुभव करते हैं। जब आपको एक पत्थर लगे या डंडा लगे तो कष्ट होता है, तो फिर इन प्राणवान् जानवरों को पीड़ा क्यों नहीं होती होगी?

श्रीमद्भागवत में एक स्थान पर लिखा है, 'जो भेद दृष्टि रखने वाले, अभिमानी पुरुष जीवों को पीड़ा पहुँचाते हैं और लोगों से वैर-भाव रखते हैं, उन्हें मन की शान्ति नहीं मिलती। जो अन्य जीवों का अपमान करते हैं, वे विविध द्रव्यों द्वारा क्रिया-पूजन करें तो भी मैं (भगवान्) उन पर प्रसन्न नहीं होता।'

मनु स्मृति कहती है, 'हिंसा का अनुमोदन करने वाले, प्राणियों के अंग-भंग करने वाले, हिंसा करने वाले, मांस बेचने, खरीदने, पकाने, परोसने और भक्षण करने वाले ये सब हिंसक माने जाते हैं।'

विष्णुधर्मोत्तरम् में हिंसा को सबसे बड़ा पाप मानते हुए लिखा है, 'हिंसा लोक और परलोक दोनों का नाश करने वाली होती है।'

भर्तृहरि नीतिशतक में 'जीव-हिंसा न करना मानव के लिए कल्याण-मार्ग' बताया है।

महाराजा शिवि एक शरणागत कबूतर की रक्षार्थ अपने अंग-प्रत्यंग काट-काट कर कबूतर के वजन के बराबर मांस तोलने लगे। इस पर भी कबूतर भारी रहा, तो वे स्वयं तराजू पर चढ़कर बैठ गए।

भगवान् बुद्ध ने भी पशु-वध के स्थान पर पशु के सिर के साथ अपनी गर्दन प्रस्तुत कर दी थी।

अमरीकी राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन ने एक बार विधान-सभा जाते हुए एक सूअर को गंदे जोहड़ में धंसे और जीवन-रक्षा हेतु छटपटाते देखा। उन्होंने अपने वस्त्र, पद और सम्मान की चिंता किए बिना उसको जीवनदान दिया। परिणामतः राष्ट्रपति के वस्त्र खराब हो गए। वे खराब वस्त्रों में ही विधान-सभा-भवन चले गए।

वर्तमान युग में ७ नवम्बर १९६६ को गो-हत्या को समस्त भारत में कानून द्वारा बन्द करवाने के लिए जो प्रदर्शन किया गया था, उसमें अनेक साधु और सज्जन गोली के शिकार हुए।

यह है पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं के प्रति सम्मान का भाव, आदर का भाव, प्राणी-मात्र में अपनी आत्मा के दर्शन का भाव। तभी तो ऋषियों के आश्रम में शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे। स्वभाव से परस्पर शत्रु पशु-पक्षी भी ऋषि आश्रम में निर्भय होकर विचरण करते थे।

बच्चे गलती करते हैं, शरारत करते हैं तो दंड के भागी होते हैं। यह दंड सुधारात्मक भावना से दिया जाता है, निर्दयता से नहीं, शत्रुता से नहीं। उसी प्रकार पशु हानि पहुँचाएँ तो प्रताड़ना या साधारण-सा दंड देने में अहिंसा भंग नहीं होती, किन्तु निर्दयता से पीटना, अपने मनोरंजन के लिए उन्हें आहत करना श्रेयस्कर नहीं। इसीलिए दिल्ली नगर में एस. पी. सी. ए. के कार्यकर्त्ता खाकी गणवेश पहने वाहनों में जोते जाने वाले पशुओं की देखभाल रखते हैं। बीमार, आहत और पीड़ित जानवर यदि वाहन में जुता हो तो सर्वप्रथम वे उसका भार हलका करवाते हैं और बाद में उसके मालिक को दण्ड देते हैं। जब तक वह स्वस्थ न हो जाए, उससे काम लेने पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं।

संत एकनाथ और गधा

संत एकनाथ गंगोत्री के जल को भगवान् रामेश्वर पर चढ़ाना चाहते थे। इतनी लम्बी पद-यात्रा और कंधे पर गंगाजल की काँवर, दोनों ही बातें साधना की थीं।

व्रत-पूर्ति के लिए संत एकनाथ रामेश्वर की ओर चल पड़े। कंधे पर गंगाजल की काँवर थी; हृदय में भगवान् का ध्यान; मन में शीघ्र रामेश्वर पहुँचने की साध।

मार्ग में उन्होंने मरुभूमि में प्यास से तड़पते एक गधे को देखा। उनका हृदय द्रवित हो गया। वे गधे की आत्मा में भगवान् रामेश्वर के दर्शन करने लगे। कंधे से काँवर उतारी। गंगाजल उस प्यासे गधे को पिला दिया। मरणासन्न गधा गंगाजल पीकर जो उठा और चल पड़ा।

इतने श्रमसाध्य जल का यह उपयोग देखकर उनके साथी चौंके। एकनाथ जी प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने साथियों से कहा, 'मैंने भगवान् रामेश्वर को जल चढ़ाया है। साक्षात् गंगाधर रामेश्वर को ही तृप्त किया है।'

गऊ और कसाई

छत्रपति शिवाजी अभी १२ वर्ष के ही थे। एक दिन वह बीजापुर के मार्ग पर घूम रहे थे। उन्होंने एक अजीब दृश्य देखा।

एक कसाई एक गाय को रस्सी से बाँधे लिए जा रहा है। गाय आगे जाना नहीं चाहती। वह रांभकर सहायता की याचना कर रही है। गाय की आँखों में आँसू भावी विपत्ति के परिचायक हैं। कसाई उसे डंडे से पीट रहा है। दुकानदार तथा सड़क पर चलने वाले हिन्दू गाय की पुकार सुनकर अनसुनी कर रहे हैं। कारण, राज्य मुगलों का है। मुगलों के अत्याचार से सभी भयभीत हैं।

शिवाजी को यह स्थिति असह्य हो उठी। वे गौ-माता पर अत्याचार एवं उसका वध सहन नहीं कर सकते थे। क्रोध से उनका चेहरा तमतमा गया। वे उस कसाई के पास गए। उन्होंने उस कसाई को समझाया। कसाई किसी भी प्रकार गऊ को मुक्त करने के लिए तय्यार न हुआ। निदान शिवा ने म्यान से तलवार निकाली और गऊ की रस्सी काट दी। रस्सी कटते ही गाय सिर पर पैर रखकर भाग खड़ी हुई।

कसाई ने शिवाजी से लड़ना-झगड़ना शुरू कर दिया। शिवाजी ने उस कसाई का वध कर दिया।

राजकुमार सिद्धार्थ अपने चचेरे भाई देवदत्त के साथ बाग में घूमने गए। बाग में एक तालाब था। तालाब में कमल खिले हुए थे और हंस तैर रहे थे। सिद्धार्थ इसी दृश्य में भावविभोर हो वहीं एक राजचबूतरे पर बैठ गए। देवदत्त उठकर कहीं चले गए।

थोड़ी देर बाद सिद्धार्थ के पास एक राजहंस आकर गिरा। वह छटपटा रहा था। उसकी छाती के पास एक तीर चुभा हुआ था। वहाँ से खून बह रहा था। सिद्धार्थ ने झटपट राजहंस को अपनी गोदी में उठा लिया। तीर बाहर निकाला और राजहंस के घाव को तालाब के पानी से धोया। अपने रेशमी वस्त्र को फाड़कर तुरन्त पट्टी बांधी। उसे छाती से चिपका लिया।

थोड़ी देर में देवदत्त आया। उसने अपने शिकार राजहंस को भाई की गोदी में देख कर आश्चर्य हुआ। देवदत्त ने उससे राजहंस माँगा। पीड़ित और आहत राजहंस को सिद्धार्थ ने देने से इन्कार कर दिया। उनका कहना था. 'मारने वाले से बचाने वाले का हक अधिक होता है।' देवदत्त का आग्रह था कि 'राजहंस को मैंने मारा है, अतः मेरा है।'

दोनों झगड़ते राजदरबार में पहुँचे तो महाराजा ने दोनों के तर्क सुने। अन्त में सिद्धार्थ के पक्ष में निर्णय देते हुए महाराजा ने कहा 'मारने वाले से बचाने वाले का हक अधिक होता है।'

*

हिरणी और गजनी का बादशाह

एक मनुष्य जंगल में से गुजर रहा था। उसे एक हिरणी और उसका सुन्दर बच्चा दिखाई दिया। वह उनको प्राप्त के लिए दौड़ा। हिरणी तो भाग गई, किन्तु बच्चा पकड़ा गया। मनुष्य उस बच्चे को गोद में लेकर चला। वह मन में बहुत प्रसन्न था।

कुछ दूर चलने पर उसे पीछे से किसी जानवर के चलने की आहट सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा। हिरणी आँखों में आंसू लिए उसके पीछे-पीछे चल रही थी। उस मनुष्य को दया आ गई। उसने बच्चे को छोड़ दिया।

बच्चा छूटते ही छलांग मारता हुआ माँ के पास जा पहुँचा। हिरणी मूक आशीर्वाद देती हुई प्रसन्नवदना बच्चे के साथ लौट गई।

रात्रि को उस मनुष्य ने एक स्वप्न देखा कि कोई मनुष्य उससे कह रहा है—'इस दया के लिए तुझे बादशाहत मिलेगी।'

आगे चलकर यही व्यक्ति गजनी का बादशाह बना।

*

घायल राजहंस

राजकुमार सिद्धार्थ अपने चचेरे भाई देवदत्त के साथ बाग में घूमने गए। बाग में एक तालाब था। तालाब में कमल खिले हुए थे और हंस तैर रहे थे। सिद्धार्थ इसी दृश्य में भावविभोर हो वहीं एक राजचबूतरे पर बैठ गए। देवदत्त उठकर कहीं चले गए।

थोड़ी देर बाद सिद्धार्थ के पास एक राजहंस आकर गिरा। वह छटपटा रहा था। उसकी छाती के पास एक तीर चुभा हुआ था। वहाँ से खून बह रहा था। सिद्धार्थ ने झटपट राजहंस को अपनी गोदी में उठा लिया। तीर बाहर निकाला और राजहंस के घाव को तालाब के पानी से धोया। अपने रेशमी वस्त्र को फाड़कर तुरन्त पट्टी बांधी। उसे छाती से चिपका लिया।

थोड़ी देर में देवदत्त आया। उसने अपने शिकार राजहंस को भाई की गोदी में देख कर आश्चर्य हुआ। देवदत्त ने उससे राजहंस मांगा। पीड़ित और आहत राजहंस को सिद्धार्थ ने देने से इन्कार कर दिया। उनका कहना था. 'मारने वाले से बचाने वाले का हक अधिक होता है।' देवदत्त का आग्रह था कि 'राजहंस को मैंने मारा है, अतः मेरा है।'

दोनों झगड़ते राजदरबार में पहुँचे तो महाराजा ने दोनों के तर्क सुने। अन्त में सिद्धार्थ के पक्ष में निर्णय देते हुए महाराजा ने कहा 'मारने वाले से बचाने वाले का हक अधिक होता है।'

हिरणी और गजनी का बादशाह

एक मनुष्य जंगल में से गुजर रहा था। उसे एक हिरणी और उसका सुन्दर बच्चा दिखाई दिया। वह उनकी प्राप्ति के लिए दौड़ा। हिरणी तो भाग गई, किन्तु बच्चा पकड़ा गया। मनुष्य उस बच्चे को गोद में लेकर चला। वह मन में बहुत प्रसन्न था।

कुछ दूर चलने पर उसे पीछे से किसी जानवर के चलने की आहट सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा। हिरणी आँखों में आंसू लिए उसके पीछे-पीछे चल रही थी। उस मनुष्य को दया आ गई। उसने बच्चे को छोड़ दिया।

बच्चा छूटते ही छलांग मारता हुआ माँ के पास जा पहुँचा। हिरणी मूक आशीर्वाद देती हुई प्रसन्नवदना बच्चे के साथ लौट गई।

रात्रि को उस मनुष्य ने एक स्वप्न देखा कि कोई मनुष्य उससे कह रहा है—'इस दया के लिए तुझे बादशाहत मिलेगी।'

आगे चलकर यही व्यक्ति गजनी का बादशाह बना।

*

रखने, अपने तौलिये साफ रखने और थूकने के बुरे अभ्यास इत्यादि पर विशेष लक्ष्य रखने को शिक्षा दी जाती है। इसका साधन भली-भान्ति से हो सकता है यदि मण्डली को जिसका छात्रावास या कक्षा का कमरा सबसे स्वच्छ हो उसको कुछ पारितोषिक देकर जूनियर सदस्यों को उत्साहित करें।

(ग) स्वास्थ्य सम्बन्धी विज्ञापन और कहावतों का प्रस्तुत करना।

(घ) ग्रामों और पुरों में प्रचारक समाज। निकासी नाटकों इत्यादि द्वारा स्वास्थ्य का प्रचार करना।

(ङ) ग्रामों की स्वच्छता। रोगों के निरोध इत्यादि पब्लिक हैल्थ विभाग से संयुक्त होकर काम करना।

(च) पाठशाला के डॉक्टर द्वारा निरीक्षण इत्यादि मे सहायता करना।

(छ) अन्वेषण के निरोध की कार्य-कला में भाग लेना जिसके लिये हैडक्वार्टर ने योग्य सामग्री का प्रबंध किया है।

(२) सेवा

(ट) प्रथम सहायता और गृह-चिकित्सा शिक्षा को पाकर जूनियर सदस्य दूसरों की सेवा करने को उत्साहित किये जाते हैं।

(ठ) दीन बालकों को भोजन, वस्त्र, औषधि और पाठ्य-पुस्तकें इत्यादि से सहायता करना।

(ड) घायलों को प्रथम सहायता देने के लिए पाठशालाओं में प्रथम सहायता की अल्मारी का प्रबन्ध।

(ढ) रेडक्रॉस के सप्ताह, स्वास्थ्यनिरीक्षण सप्ताह, स्वास्थ्य प्रदर्शनी इत्यादि के समय पर मुख्य रेड क्रॉस की सहायता करना।

(ण) संकट के समय पर जैसे बाढ़, अकाल, आग का लगना, भूकम्प इत्यादि में दुखियों की सहायता करना।

समय-पालन

ईमानदारी

शालीनता

एक दिन अमेरिका के राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने देखा
देर से आ रहे हैं। कारण पूछने पर सभी ने घड़ा ठीक न
हाना बनाया। इस पर वाशिंगटन ने कहा, 'आप दूसरी
ए, नहीं तो मुझे दूसरा मन्त्री रखना पड़ेगा।'

× × ×

नेपोलियन बोना-पार्ट समय-पालन में बड़े सख्त थे। एक
का जनरल सेना सहित नियत समय से पाँच मिनट बाद पहुँ
मिनट के उस बिलम्ब ने नेपोलियन के भाग्य को बदल दि
कैद हो चुका था।

× × ×

कोई सज्जन अपनी स्वरचित गीता महात्मा गाँधी को सु
ते थे। गाँधी जी ने उन्हें समय दे दिया। वे सज्जन निश्चित
त समय से आधा घंटा पूर्व पहुँच गये और बाहर बैठे गाँधी
ने की प्रतीक्षा करते रहे।

उन्होंने देखा कि उनके समय से पाँच मिनट पूर्व कोई सज्जन
चले गए। गाँधी जी अब अकेले थे। गाँधी जी के निजी स
बाहर आए तो गीताकार ने अन्दर जाने की आज्ञा मा
ाया कि गाँधी जी सो गए हैं।

दो मिनिट बाद ही घोर निद्रा में सोने की-ध्वनि सुनाई
ताकार यह स्थिति देखकर घबराए। अब तो गाँधी जी
गे और मेरे लिए दिया समय निकल जाएगा।

किन्तु गीताकार ने देखा कि ठीक समय पर गांधी जी मुँह घोकर उससे मिलने के लिए तय्यार बैठे हैं।

× × ×

ये हैं महापुरुषों के समय-पालन के उदाहरण। वस्तुतः सम पालन का बहुत महत्त्व है। दैनन्दिन जीवन में हमें अनेक अवसर इसका पालन करना होता है। स्कूल में समय पर न पहुँचिए, अध्याप कक्षा से बाहर खड़ा कर देंगे। जुर्माना करेंगे सो अलहदा।

परीक्षा-भवन में आप विलम्ब से पहुँचिए। प्रथम तो परीक्ष भवन में घुसने को आज्ञा ही नहीं मिलेगी और मिल भी गई त घवराहट में आप प्रश्नों के उत्तर ठीक नहीं दे पाएँगे।

स्कूल-बस आपकी प्रतीक्षा में खड़ी है। आप नियत समय प बस अड्डे पर नहीं पहुँचे। बस निकल गयी और आप स्कूल जाने वंचित हो जाएंगे।

आपके पिताजी रेल द्वारा बाहर जा रहे हैं। स्टेशन पहुँचने में एक मिनिट का विलम्ब हो गया। देखते क्या हैं? गाड़ी उनके सामने प्लेट फॉर्म पार कर रही है। मन मसोस कर रह गए।

गाँव के स्कूल में छुट्टी होती है १२.४० मिनट पर और शहर को ओर आने वाली बस १२.५० पर चलती है। आप किसी भी आवश्यक या अनावश्यक कारण से स्कूल में कुछ देर ठहर गए। समझ लीजिए अब दो घंटे बाद चलने वाली बस आपको ले जाएगी। समय का ध्यान न रखने के परिणामस्वरूप दो घंटे की कैद भुगतिये।

किसी व्यापारी को अकस्मात् भुगतान करना है। उसने नौकर को चैक लेकर बैंक भेजा। नौकर अपनी मस्ती और उपेक्षा के कारण २ बजकर २ मिनिट पर बैंक में पहुँचा। बैंक दो बजे बंद हो चुका था। आलसी नौकर के कारण व्यापारी को नीचा देखना पड़ा।

उर्दू के एक प्रसिद्ध शायर की पुत्रवधू बी. ए. अन्तिम वर्ष का अध्ययन कर रही थी। दूरस्थ कॉलिज होने के कारण सदा विलम्ब

से पहुँचती। प्राध्यापक ने तंग आकर अनुपस्थिति लगानी आरम्भ कर दी। परिणामतः निरन्तर अनुपस्थिति होने पर कॉलिज से उस का नाम कट गया और परीक्षा में प्रवेश रोक दिया गया।

समय-पालन में समय की कमी की शिकायत ठीक नहीं। हम गप्पें मारने, मित्रों के साथ व्यर्थ कार्यों मे समय नष्ट करने, शरारतें करने और अनावश्यक कार्य करने में समय निकाल देते हैं। यदि हम समय पर सभी कार्य करें तो समयाभाव की शिकायत हमें हो ही नहीं सकती।

फ्रांस देश के सम्राट् लुई कहा करते थे, 'समय का सदुपयोग सुशीलता का चिह्न है।' अथर्ववेद में समय की महत्ता इस प्रकार वर्णित है, 'समय सदा गतिशील घोड़े के समान है। बुद्धिमान लोग इसे अपना वाहन बनाते हैं। क्योंकि यह सर्वव्यापक है। भिन्न परि-स्थितियों के कारण अपना रंग बदलता है।'

हमें भी जीवन में समय-पालन का महत्त्व समझना चाहिए और इस गुण को अपनाना चाहिए।

★

ईमानदारी

जीवन में ईमानदारी का बहुत महत्त्व है। पग-पग पर स्थान-स्थान पर पाठ-पठन्म ईमानदारी की आवश्यकता है। ईमानदारी की सूखी रोटी में जो आनन्द है, वह बेईमानी के हलवे-माडे में नहीं।

बिना पूछे किसी वस्तु का हरण बेईमानी है। आलस्यवश कार्य में शिथिलता बेईमानी है। निर्धारित मूल्य से अधिक दाम वसूल करना बेईमानी है। कर्तव्य के प्रति उपेक्षा बेईमानी है। घूस, रिश्वत बेईमानी है। असत्य और लोभ बेईमानी है। दूसरे का अधिकार छीनना बेईमानी है।

ईमानदारी आत्मतुष्टि को जन्म देती है। वह आत्म-विश्वास जाग्रत करती है। उससे सहनशीलता और धैर्य का प्रादुर्भाव होता है। सत्य बोलने की शक्ति आती है। ईमानदारी मनुष्य को परिश्रमी और उद्यमी बनाती है। इसके आश्रय में मनुष्य प्रलोभनों के बीच अडिग खड़ा रहता है।

ईमानदारी की कोई सीमा नहीं, कोई परिधि नहीं। इसका क्षेत्र व्यापक और विशाल है। आप स्कूल में पढ़ते हैं। घर का काम नकल करके कापी में दिखाते हैं, तो बेईमानी करते हैं। आप साथियों की पुस्तक या कापी की चोरी करते हैं, तो आप बेईमानी करते हैं। परीक्षा-भवन में बैठे हैं, प्रश्न नहीं आता। नकल करने के लिए ताक झांक कर रहे हैं। यह बेईमानी है। पी. टी. के पीरियड में घर भाग जाना बेईमानी है।

बेईमानी करने के लिए झूठ बोलना पड़ता है। झूठ लोभ का साथी है, किंतु संतोष का शत्रु है। संतोष के अभाव में भय उस पर हावी होगा। जीवन में एक प्रकार की प्रवंचना घर कर जाएगी। अन्ततः वह अपनी आत्मा से भी ईमानदार न रह सकेगा।

बेईमानी शीघ्र फलती है. ईमानदारी देर से रंग लाती है। शीघ्र फलित वस्तु का अन्त भी शीघ्र होता है। अंग्रेजी में एक कहावत है Easy come and easy go. गांधी जी ईमानदारी के पुजारी थे। भारत ही नहीं, विश्व उनके सिद्धान्तों में मान्यता रखता है। तभी वे विश्ववन्द्य कहलाते हैं। दूसरी ओर आजकल के नेताओं पर विश्व की बात छोड़िए देशवासियों को ही विश्वास नहीं। क्योंकि उनके नेतृत्व-शक्ति-प्राप्ति में ईमानदारी नहीं है।

मालिक ईमानदार नौकर चाहता है। सरकार ईमानदार कर्मचारी चाहती है। व्यापारी ईमानदार साथी चाहता है। मानव ईमानदार सखा या सखी चाहता है। पाठक ईमानदार लेखक चाहता है। छात्र ईमानदार अध्यापक चाहते हैं।

घूस के रुपये पर पलने वाले कर्मचारी, जनता के रुपए हड़पने वाले नेता, साहित्य के नाम पर 'मांगकर, उधार लेकर और चुराकर' साहित्य रचने वाले साहित्यकार, परीक्षा की उत्तर-पुस्तिकाएं दूसरों से लिखाने वाले परीक्षक, देश को गुमराह करने वाले मंत्री जीवन में क्या कभी सुख और शान्ति से रह सकते हैं? कदापि नहीं। उनकी आत्मा उन्हें झकझोरेगी, धिक्कारेगी, लानतें डालेगी।

अतः हमें जीवन में सदा ईमानदारी से कार्य करना चाहिए। लालू बढ़ई की ईमानदारी की कमाई से दूध की धारा और मलूक की बेईमानी [illegible] होंगी।

★

शालीनता

शालीनता ही समस्त ऐश्वर्य का मूल है। चरित्रवान् का वैभव कभी क्षीण नहीं होता। शालीनता का प्रत्येक स्थान पर आदर होता है। स्वयं देवगण भी उसके द्वार पर भिक्षुक बनकर आते हैं। 'सादा जीवन उच्चविचार' शालीन व्यक्ति का महद्गुण है। महाभारत के अनुसार '*षड् दोषा: पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता, निद्रा, तन्द्रा भय क्रोध आलस्य और दीर्घसूत्रता*, प्रगतिशील व्यक्ति के जीवन में ये छ: दोष बाधक है—*अधिक सोना, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य तथा* दीर्घसूत्रता, अर्थात् ठहर-ठहर कर काम करने की प्रवृत्ति।

जीवन में उच्चता एवं आदर्श स्थापन के लिए सर्वप्रथम आवश्यक तत्त्व है निस्वार्थ सेवा, निस्वार्थ प्रेम, स्वार्थरहित सहयोग की भावना। जिस तरह वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, नदियाँ स्वयं जल नहीं पीतीं, उनका सब कुछ औरों के लिए ही है, ठीक उसी प्रकार महात्मा पुरुष दूसरे के लाभार्थ अपना बर्ताव करते हैं। कुछ लोग स्वार्थ साधन के लिए ही दूसरे की विपत्ति में सहायता करते हैं या उससे मैत्री-भाव बढ़ाते हैं। यह हीनता है, गिरावट है। महापुरुषों के आठ लक्षण कहे गये हैं—

> अष्टौ गुणा पुरुषं दीपयन्ति
>
> प्रज्ञा च कौल्यं च दम: श्रुतं च।
>
> पराक्रमश्चा ऽबहुभाषिता च
>
> दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥

उत्तम बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय-दमन, शास्त्र-ज्ञान, पराक्रम, मितभाषिता, शक्ति के अनुसार दान एवं दूसरों के द्वारा की गई उनके प्रति कृतज्ञता, इन सभी गुणों का संचय व्यक्ति मात्र का जीवन-धर्म है। इनमें कुछ एक गुण भी व्यक्ति के जीवनोत्थान में सहायक हो सकते हैं। सर्वप्रथम हमें चरित्र की ओर ध्यान देना चाहिए क्योंकि चरित्र गया तो सब कुछ चला गया। स्मृतिकार मनु का भी यही मत है कि चरित्रहीन को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते, और चरित्रहीन व्यक्ति में उक्त कोई गुण आकर भी ठहर नहीं सकता। उत्तमबुद्धि, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, दुश्चरित्र के पास कहाँ ?

त्याग-भावना भी शालीनता का महद् अंग है। दधीचि ऋषि ने वृत्तासुर से देवाधिदेव इन्द्र की रक्षा के लिए शरीर की हड्डियाँ तक दे दीं, काशी नरेश महाराजा हरिश्चन्द्र ने सत्य की रक्षा के लिए न केवल राज्य अपितु पत्नी एवं पुत्र तक का त्याग कर दिया, हमें भी जीवन में विवेक बुद्धि से शक्ति के अनुसार इन गुणों को अपने में लाना चाहिए। जीवन में यश संचय करना भी मानव मात्र के लिए कल्याणकारक है। यश का संचय सत्कर्म-सहृदयता, शूरता आदि गुणों से होता है। भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है—सम्मानित पुरुष के लिए अपकीर्ति मृत्यु से भी परे होती है। तात्पर्य है सत्पुरुष ही जीनव का सार्थक बनाते हैं। वैसे तो कौआ और कुत्ता भी दूसरे के द्वारा फेंके हुए ग्रास खाकर जीवित रहते हैं।

इसी प्रकार आचरण की पवित्रता, औदार्य भावना पराक्रम पूर्ण ऐश्वर्य युक्त जीवन बिताने वाला ही शालीनता, तेजस्विता, आदि गुणों से युक्त होकर यथार्थ जीवन लाभ प्राप्त करता है।

अनुशासन-समितियाँ तथा प्रोफेक्ट प्रणाली

विद्यार्थी में उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करने के लिए, उस पर कुछ जुम्मेवारियाँ डालनी चाहिएँ। जुम्मेवारी आने पर वह उसे निभाने के लिए अपने अन्दर समय-पालन, ईमानदारी और शालीनता के गुण तो लाएगा ही, साथ ही उसमें दूसरों के प्रति संवेदनशीलता और अनुशासन-भावना का भी उदय होगा।

अनुशासन-समितियाँ स्कूल के अनुशासन को स्थिर रखती हैं। इसमें दो-तीन अध्यापक तथा दो-तीन छात्र प्रतिनिधि होते हैं। प्रिंसिपल महोदय इसके अध्यक्ष होते हैं। स्कूल में छात्रों के बीच होने वाली छोटी-मोटी अप्रिय घटनाओं को यह अनुशासन-समिति रोक देती है। समिति का निर्णय अन्तिम होता है। प्रधानाध्यापक से स्वीकृति लेने की आवश्यकता नहीं होती।

अध्यापक की अनुपस्थिति में पढ़ाई में होशियार विद्यार्थी द्वारा कक्षा पढ़ाने की योजना 'प्रोफेक्ट प्रणाली' कहलाती है। कल्पना कीजिए स्कूल में दो अध्यापक अवकाश पर हैं—(१) हिसाब का; २) इतिहास का। उनके पीरियड आठवीं, नवमी और दसवीं कक्षाओं में आते हैं। प्रधानाचार्य गणित और इतिहास में होश्यार १०वीं या ११वीं श्रेणी के दो छात्रों को उस दिन उन अध्यापकों के पीरियड पढ़ाने के लिए देंगे। उस दिन के लिए वे छात्र विद्यार्थी नहीं अध्यापक होंगे। वे अपनी पढ़ाई छोड़कर अध्यापन कार्य करेंगे।

इस प्रणाली से विद्यालय के पक्ष में यह लाभ है कि अध्यापक के अभाव में जो कक्षा शोर करतीं, अन्य कक्षाओं की पढ़ाई में विघ्न डालतीं, वहाँ अब अनुशासन में रहेंगी। साथ ही उनके विषय-विशेष के पीरियड की पढ़ाई भी चालू रहेगी।

इस प्रकार छात्रों को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों के लिए प्रेरित करना चाहिए।

उत्तम वाणी
सत्-साहित्य अध्ययन

उत्तम वाणी

महात्मा कबीर ने कहा है—

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरों को शीतल करे, आप हूँ शीतल होय॥

इस दोहे में महात्मा कबीर ने मनुष्य के मुँह से निकलने वाली वाणी के श्रेष्ठ लक्षण बताए हैं। हमें ऐसे शब्द उच्चारण करने चाहिए, जिनसे कहने वाले और सुनने वालों का हृदय शीतल हो। कर्कश और कठोर शब्द अपने हृदय को तो विचलित करेंगे ही, सुनने वाले के हृदय को भी छलनी करेंगे। फलतः उनमें शत्रुता की भावना उत्पन्न होगी। परिणामतः मार-पिटाई की नौबत आती है। उस समय रहीम का निम्न दोहा चरितार्थ होता नजर आता है—

रहिमन जिह्वा बावरी, कह गई सर्ग पताल।
आपु तो कह भीतर गई, जूती खात कपाल॥

इसीलिए महाभारतकार का कहना है, 'किसी बड़ी विपत्ति में होने पर भी अपने से महान् पुरुष को 'तू' कहकर सम्बोधित न करो, क्योंकि 'तू' कहकर सम्बोधित करना तथा वध करने में समझदार कोई भेद नहीं मानते।'

विद्यार्थियों का परस्पर गाली देना, अपशब्द कहना, चुगली खाना, तू, अबे, ओय, अरी से सम्बोधित करना श्रेयस्कर नहीं।

दूसरी ओर मनुस्मृति समझाती है, 'वाणी में सब अर्थ समाहित हैं, वाणी ही उनका मूल है और वाणी में ही उनकी निष्पत्ति है। इस कारण वाणी की जो चोरी करते हैं अर्थात् झूठ बोलते हैं, वे सब अर्थों में चोरी करने वाले होते हैं।'

अतः वाणी को 'हिए तराजू तोल के' तब मुख से बाहर निकालना चाहिए। मनुस्मृति का आदेश है, 'सत्य बोलो, पर प्रिय बोलो, सत्य होते हुए भी जो सुनने वाले को अप्रिय लगे--ऐसा सत्य न बोलो। इसी प्रकार प्रिय लगने वाला असत्य भी न बोलो, यही सनातन धर्म है।' बाण ने कादम्बरी में कहा है, 'जो बहुत बोलता है, लोग उसका विश्वास नहीं करते।' स्वामी रामकृष्ण परमहंस कहते हैं, 'वाणी निर्मल होती है मौन से।'

'संत के शब्द जन-मन के लिए संगीत और सुगन्ध होते हैं। उन की वाणी के मर्म का अन्तिम स्वरूप और लक्षण भी अखण्ड विनोद ही है।' विद्यार्थियों को अपनी वाणी से इसी प्रकार के शब्द उच्चारित करने चाहिएँ।

टेलीक्लब योजना से विद्यार्थियों में वाणी का संयम आएगा; उचित, श्रेष्ठ और उपयुक्त शब्दों का उच्चारण करने का अभ्यास पड़ेगा। आकाशवाणी दिल्ली से टेलिविजन पर स्कूली बच्चों के कार्यक्रम आते हैं। उसमें प्रत्येक स्कूल अपनी मंडली भेजकर भाग ले सकता है। अतः स्कूलों को टेलीक्लब योजना चलानी चाहिए।

आज का विद्यार्थी तीन प्रकार का साहित्य पढ़ने में रुचि लेता है—(१) जासूसी उपन्यास (२) अश्लील उपन्यास (३) सिने जगत् की पत्र-पत्रिकाएँ।

अश्लील साहित्य यद्यपि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के लिए स्वीकृत किसी भी पुस्तक सूची में नहीं है, फिर भी आज दिल्ली प्रदेश के प्राय: प्रत्येक विद्यालय में यह साहित्य बहुसंख्या में मिलेगा। इतना ही नहीं, ऐसे लेखकों की एक नहीं, दो नहीं, सम्पूर्ण कृतियां पुस्तकालयों में होंगी। आप 'पुस्तक देने वाला' (Issue Register) उठाकर देखिए। ये पुस्तकें कितनी बार कितने छात्र-छात्राओं ने पढ़ी है। आपकी आंखें चुंधिया जाएँगी।

फिर स्कूल लायब्रेरी से पुस्तक नहीं मिली तो हर गली और मुहल्ले में किराये पर ऐसी पुस्तकें देने वाले बैठे हैं। वे उनकी मन: तृप्ति करेंगे।

सिने-जगत की पत्र-पत्रिकाओं ने तो छात्र-छात्राओं के हृदय में इतना स्थान बना लिया है कि परस्पर बात करेंगे तो चल-चित्रों की, अभिनेता-अभिनेत्रियों की; गाने गाएंगे तो सिनेमाओं के। चलने में नकल करेंगे तो पिक्चर की। केश-विन्यास, वस्त्र-परिधान, शरीर की सजावट सब पर चित्र-जगत की छाप होगी। जहाँ सिवाय प्रेम के कुछ है ही नहीं।

अश्लील साहित्य और सिनेमाई प्रेम ने आज युवक वर्ग को भ्रष्ट और नष्ट करने का मानों ठेका लिया हुआ है।

जासूसी उपन्यासों की मार-काट, हवाई उड़ानें और काल्पनिक वीरता छात्रवर्ग के नष्ट-भ्रष्ट जीवन में हवाई कार्यान्विति उत्पन्न करती है।

आवश्यकता है, साहसपूर्वक इस पर
उच्चतर माध्यमिक स्तर तक इस प्रका
रखना दण्डनीय अपराध समझा जाए।

दूसरी ओर, बहुत अच्छी, जीवन में
चरित्रवान्, रोचक और शिक्षाप्रद पुस
होनी चाहिएँ। इसके दो रूप हो सकते हैं—

(१) एक अच्छी पुस्तक को अधिक प्रति
के सभी विद्यार्थियों में वितरित कर दी जा

(२) ४०-५० श्रेष्ठ पुस्तकें छांटकर कक्ष
और पढ़ लेने के बाद उन्हें परस्पर परिवर्त

आवश्यकता है श्रेष्ठ पुस्तकों के प्रति रु
कक्षा-पुस्तकालय ही कर सकेंगे।